सोमसी

जनवरी 90
अप्रैल 90

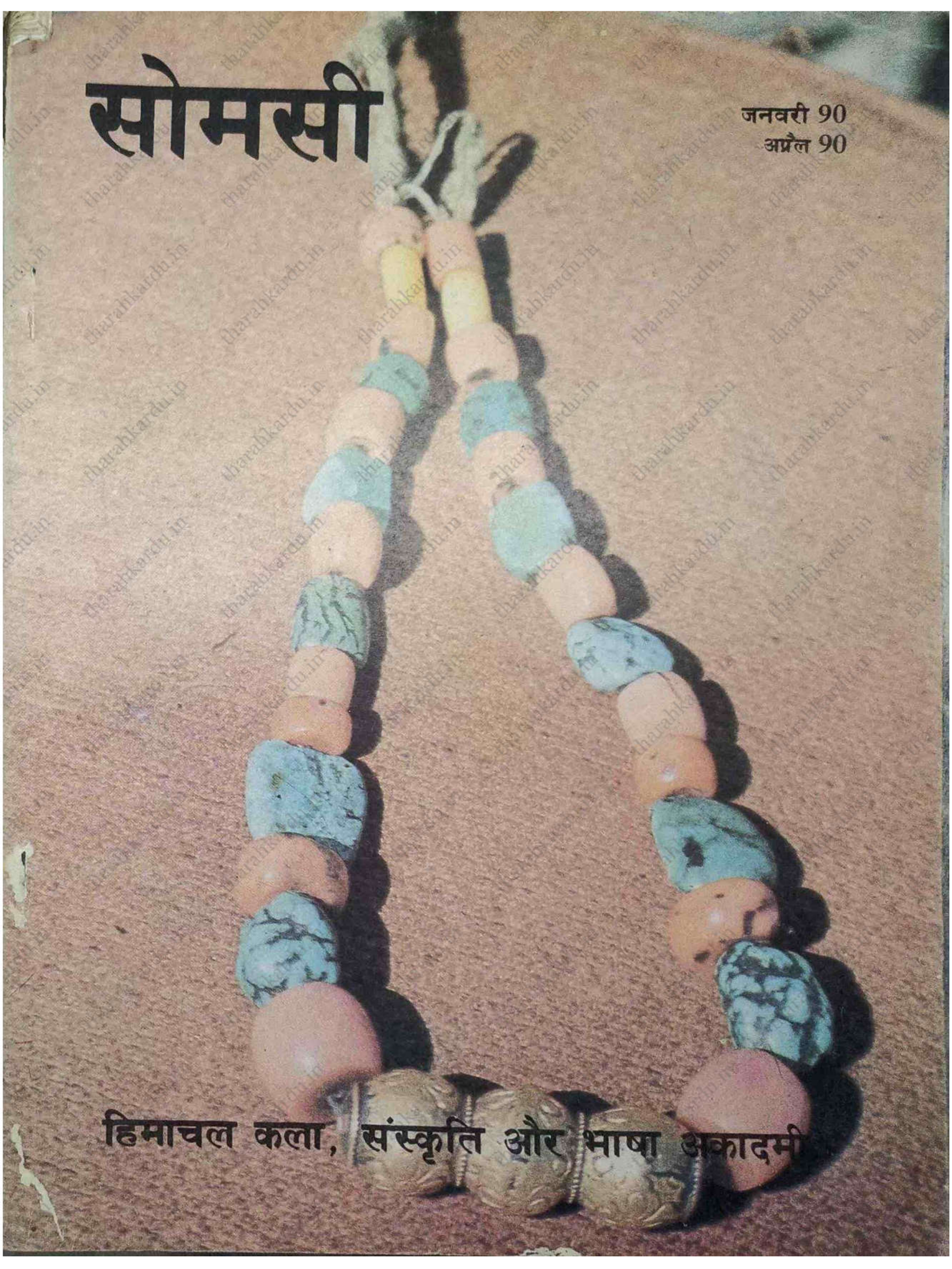

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी

tharahkardu.in

वह्यूं—स्पिति क्षेत्र में प्रचलित महिलाओं का आभूषण।

आवरण पृष्ठ : जनजातीय क्षेत्र स्पिति (जिला लाहुल-स्पिति) में महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले आभूषण। 'उल्तिक'

वर्ष : 16
अंक 1, 2 जनवरी, अप्रैल 1990
पूर्णांक : 61, 62
जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अक्तूबर में प्रकाश्य

सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति और साहित्य की त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक
डॉ० बंशीराम शर्मा

संयुक्त संपादक
सरोज सांख्यायन
सम्पादन व प्रकाशन सहयोग
डॉ० कर्म सिंह

उपसंपादक
कु० जयवन्ती चौहान
प्रूफशोधन
निर्मल कौशल

वार्षिक मूल्य : 12/- बारह रुपये
एक प्रति : 3/- तीन रुपये +तीन = 6/-

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में दिए गए तथ्यों से संपादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

पारदर्शियां हिमाचल अकादमी प्रलेखन संग्रह

प्रकाशक : सचिव,
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
क्लिफ एण्ड एस्टेट शिमला-171 001 हि०प्र०
दूरभाष : 6330, 4993

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	लेख	लेखक	पृष्ठ
	सम्पादकीय		
1.	कविता के दायरे में : लाल चन्द प्रार्थी	डॉ० गौतम शर्मा 'व्यथित'	1
2.	स्वतन्त्रता संग्राम में हिमाचली साहित्यकारों का योगदान	डॉ० ब्रह्म दत्त शर्मा	13
3.	हिमाचल प्रदेश में साहित्यक लेखन : नई दिशायें, समस्याएं तथा सम्भावनाएं	डॉ० सुशील कुमार फुल्ल	21
4.	सिद्धनाथ सम्प्रदाय में सिद्ध बाबा सिब्बो का स्थान	संसार चन्द प्रभाकर	30
5.	हिमाचल की लोक संस्कृति एवं जनजीवन	डॉ० शमी शर्मा	35
6.	लोक परम्पराओं से जुड़े जन्म संस्कार गीत	राम लाल पाठक	38
7.	मण्डियाली लोकगाथाओं में श्रवणकुमार	डॉ० हेमप्रभा शर्मा	45
8.	कुल्लुवी भित्ति चित्रांकन में संस्कृति तत्त्व	दयानन्द सरस्वती	49
9.	हिमाचल प्रदेश में संस्कृत और संस्कृत पत्रकारिता	पृथुराम शास्त्री	51
10.	ममलेश्वर महादेव का मंदिर	तीर्थ राम शर्मा	62
11.	प्रत्यूष गुलेरी की रचना प्रक्रिया (समीक्षा)	डॉ० कश्मीरी लाल	64
12.	छतराड़ी में शिव शक्ति का प्रदुर्भाव	प्रेम शर्मा	67
13.	त्रिवेणी महादेव : एक दर्शनीय स्थल	शशिकान्त शास्त्री	70
14.	बहुला	तारा शर्मा	72
15.	वत्स्य जी से अंतिम भेंट (साक्षात्कार)	डॉ० प्रत्यूष गुलेरी	73
16.	चम्बी की कहानी	हरिकृष्ण मुरारी	75
17.	कोटगढ़ क्षेत्र में प्रचलित विवाह गीत	विमला मेहता,	79
18.	हिमाचल अकादमी की गतिविधियां		

tharahkardu.in

सम्पादकीय

हिमाचल प्रदेश साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में उन्नति की चरमावस्था की ओर शनैः-शनैः अग्रसर होता चला जा रहा है। यहां का प्रबुद्ध लेखक वर्ग अपनी विरासत को जनसाधारण तक पहुंचाने में यदि अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर रहा है तो लोकमानस भी साहित्य सुधा का रसास्वादन करके सन्तोष की सुखद अनुभूति से आनन्दित हो रहा है। सोमसी के माध्यम से लोकानुरञ्जन की विभिन्न विधाओं से आत्मीयता स्थापित करके पाठक अवश्यमेव लाभान्वित हो रहे होंगे, यह हमारी सुदृढ़ धारणा है। सोमसी के विगत दो अंकों में लोकनाट्यों पर महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सामग्री का पाठकों द्वारा स्वागत किया जाना विद्वान् लेखकों के परिश्रम का ही प्रतिफलन है।

गत अंक में श्री ज्वाला प्रकाश चेतन के लेख 'लोकधर्मी नाट्य परम्परा 'बांठड़ा' में 'बांठड़ानाट' के आधार पर प्रदत्त सामग्री के प्रामाणिक विवेचन ने विद्वानों को इस विषय पर और भी गम्भीर चिन्तन की ओर प्रवृत्त किया है जिससे इस पारम्परिक विधा का गहन अध्ययन किया जा सकेगा। हमारे सांस्कृतिक परिवेश में इस प्रकार की अन्य विधाएं भी विद्यमान हैं जिनके सम्बन्ध में अभी भी अनुसन्धान किया जाना अपेक्षित है। क्योंकि लोक मानस मनोरंजन के साधनों की तलाश में सदा प्रयत्नशील रहा है और हमारी परम्पराएं उस सुरुचिपूर्ण तलाश की साक्षी हैं जिनमें स्वर्णिम इतिहास को खोजकर उज्जवल भविष्य को निहारा जा सकता है।

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जनपदों में प्राचीन एवं विशिष्ट परम्पराएं, प्रथाएं, त्यौहार, उत्सव व विविध लोक विश्वास आज भी पूर्ववत् प्रचलित हैं। यद्यपि कुछ जनपदों में अलग-अलग बोलियां बोली जाती हैं पुनरपि भाषायी व सांस्कृतिक धरातल पर पारस्परिक सौहार्द, एकता, भाईचारा व सद्भाव का अप्रतिम वातावरण इस क्षेत्र की अमूल्य धरोहर है जो इतर प्रदेश वासियों के लिए भी अनुकरणीय है।

हिमाचल प्रदेश की कला, संस्कृति एवं भाषा की छटा का दर्शन'सोमसी'की विभिन्न रचनाओं में किया जा सकता है। प्रदेश की कलात्मक, भाषायी एवं सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों की विकास-परम्परा में'सोमसी' का योगदान निःसन्देह महत्वपूर्ण रहा है। समय-समय पर निकाले गए पत्रिका के विशेषांक न केवल नियमित पाठक वर्ग के लिए संग्रहणीय हैं अपितु इस क्षेत्र में कार्यरत अनेकों बुद्धिजीवियों तथा गवेषकों के निजी संग्रहों की अमूल्य सम्पत्ति बन गए हैं। यही कारण है कि सोमसी के पुराने अंकों की भी मांग बराबर बनी रहती है।

अकादमी द्वारा प्रतिवर्ष, पहाड़ी बाबा कांशी राम जयन्ती,स्व० डॉ० यशवन्त सिंह परमार जयन्ती, स्व० लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती, पहाड़ी भाषा दिवस आदि के अवसरों पर लेखक गोष्ठियों व कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। जिनमें प्रदेश की भाषायी, सांस्कृतिक व साहित्यक परिचर्चाओं से सम्बन्धित विषयों पर महत्वपूर्ण शोध पत्र प्रस्तुत किए जाते हैं तथा प्रदेश व प्रदेश से बाहर के ख्याति प्राप्त साहित्यकार विषयपत्र की समालोचना में भाग लेते हैं। विगत अन्तराल में सम्पन्न इस प्रकार के सम्मेलनों में पढ़े गए शोध पत्र इस अंक में शामिल किए गए हैं तथा भविष्य में भी इस प्रकार की शोधपूर्ण सामग्री पाठकों को पठनार्थ प्राप्त होती रहेगी।

साहित्यिक गतिविधियों की गतिशीलता एवं नवीन सृजनात्मक प्रयोगों के कारण साहित्य में नूतन प्रक्रियाओं का समावेश होता रहता है जिससे इन शोध पत्रों के प्रतिपाद्य में कुछ कमियां संभावित है पुनरपि विद्वान् लेखकों की

समीक्षापरक पैनी दृष्टि, विषय-प्रतिपादन-कौशल व विस्तृत दृष्टिकोण प्रबुद्ध पाठकों को अवश्य लाभान्वित करेगा। इस कड़ी में कविता के दायरे में लाल चंद प्रार्थी (डॉ० गौतम शर्मा व्यथित) लेख विशेष द्रष्टव्य है।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में क्रान्तिकारी साहित्यकारों का योगदान सर्वथा निर्विवाद है। जिन्होंने पत्र-पत्रिकाओं, के सम्पादन, कविता-लेखन, तथा साहित्य की अन्य विधाओं से जुड़कर तथा लोक गीतों के माध्यम से जनसाधारण का स्वर बनकर जन-जन में स्वतन्त्रता की लहर का संचार करने में सफलता अर्जित की है उनमें प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पहाड़ी गान्धी बाबा कांशी राम और यशपाल आदि के नाम अग्रगण्य है। हिमाचल प्रदेश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में साहित्य (कविता) के माध्यम से स्वतन्त्रता आन्दोलन को क्रान्तिकारी आन्दोलन बनानेवाले 'हिमाचली साहित्यकारों का योगदान' (डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा) में उल्लिखित किया है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी हिमाचल में साहित्य-सृजन अनवरत गतिशील रहा। हिमाचल प्रदेश जहां सांस्कृतिक धरोहर से सम्पन्न है वहां प्रतिभाशाली लेखकों की भी कमी नहीं है। परन्तु यहां भी लेखन से सम्बन्धित समस्याओं का अभाव नहीं है। उन समस्याओं की ओर 'हिमाचल प्रदेश में साहित्यिक लेखनःनई दिशायें, समस्याएं तथा संभावनाएं (डॉ० सुशील कुमार फुल्ल) में इंगित ही नहीं किया गया है बल्कि उनके निदान के प्रति जागरुकता की ओर भी रचनाकारों का ध्यान आकृष्ट किया है।

हमारी संस्कृति आज भी लोक विश्वासों में जीवित है। अनेक ऐतिहासिक कथानकों, वीरगाथाओं और लोक-गाथाओं को पारम्परिक रूप से मानस पटल में सहेज कर सुरक्षित कर लिया गया है। मण्डी जनपद में प्रचलित श्रवण कुमार की लोक गाथा (डॉ० हेम प्रभा शर्मा) को यहां प्रस्तुत किया गया है। संस्कार प्रधान हिमालयी संस्कृति में लोक-जीवन जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विभिन्न रूपों में प्रचलित लोक गीतों से अनुप्राणित है। शिशु के जन्म से जुड़े संस्कार गीत श्रीकृष्ण और श्री राम की बाल लीलाओं से विशेष प्रभावित हैं। विलासपुरी जनपद की लोक-परम्पराओं से जुड़े जन्म संस्कार गीत (राम लाल पाठक) में इन्हीं मान्यताओं का प्रतिफलन दृष्टिगोचर होता है। देवभूमि हिमाचल में अनेकों देवी-देवताओं की आश्चर्यजनक कथाएं किंवदन्तियों के माध्यम से आज भी समाज में श्रद्धा व विश्वास का केन्द्र है। ममलेश्वर महादेव, छतराढ़ी (चम्बा) में प्रकटित शक्ति देवी के प्रादुर्भाव की कहानी, त्रिवेणी महादेव, आदि लेखों में प्रदत्त सामग्री उक्त विश्वास को परिपुष्ट करती है।

राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त प्रसिद्ध साहित्यकार स्व० श्री सन्तराम वत्स्य जी से अंतिम भेंट (डॉ० प्रत्यूष गुलेरी) इस अंक की विशेष उपादेय सामग्री है जिसमें वत्स्य जी के लेखन,सामाजिक परिवेश व व्यक्तित्व के बारे में सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक सन्दर्भ समाविष्ट हैं।

इस अंक में अकादमी की गतिविधियों बारे विस्तृत सामग्री भी पाठकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए दी गई है। इस अंक के विषय में आपकी प्रतिक्रियाएं/सुझाव भी आमन्त्रित हैं जिन्हें अगले अंक में 'पाठकीय' के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाएगा।

(डॉ०) बंशीराम शर्मा

कविता के दायरे में : लाल चंद प्रार्थी

डॉ. गौतम शर्मा 'व्यथित'

प्रार्थी जी मूलत: कविहृदय और सच्चे कलाकार थे। जिन्दगी के अच्छे, बुरे दौर से गुज़रा उनका जीवन स्वानुभूति के मीठे-कड़वे स्वादों से भरपूर था। लोक, वेद, पुराण, धर्म, नीति, प्रेम, सौंदर्य, प्रकृति, सुख-दु:ख, भूख-नंग, निर्धनता-सम्पन्नता, सज्जनता-दुर्जनता सभी से उनका निकट से संबंध रहा। हादसों भरी जिंदगी उनके लेखन में स्वयमेव मुखर हुई है। उनका युवाकाल प्रेम, सौंदर्य, संगीत, नृत्य, नाट्य की असीम चंचल तरंगों में अटखेलियां लेता बीता और तत्पश्चात् राजनीतिक जीवन की ऊंचाईयों की हवायें, प्रशंसकों, स्वार्थी अवसरवादी लोगों के घेरों का उन्मादी वातावरण और उसमें साक्षात्कार करती जिंदगी की सच्चाईयां देखीं और साथ ही शारीरिक अस्वस्थता के कारण जानलेवा रोग के समय जीवन-मृत्यु से साक्षात्कार पाने के क्षण, और अंत में राजनीति के गलैमर से हीन होने पर लोक व्यवहार के बदलते तेवर भी देखे। विविध रंगी जीवन यात्रा के ऐसे विभिन्न पड़ावों पर हुई अनुभूति एवं प्रतीति का स्पष्ट प्रभाव इनके काव्य साहित्य में सहज उपलब्ध होता है। उन्होंने पहाड़ी और उर्दू दोनों भाषाओं में लिखा है। वे फक्कड़ एवं मस्त स्वभाव के थे अत: वरिष्ठ मंत्री रहने पर भी ऐसी लालसा नहीं पाली कि उनका काव्य पुस्तक में छपकर सामने आए। वे निरंतर लिखते रहे जो इधर-उधर बिखरता रहा।

पहाड़ी काव्य हिमाचल एक पहाड़ी प्रदेश है। पहाड़ अपनी स्वच्छन्दता, स्वच्छता, माधुर्य, गांभीर्य तथा अचलता के प्रतीक हैं। विभिन्न ऋतुयें उन्हें प्रभावित करती हैं बेशक, परंतु उनका स्वाभाविक स्वरूप सदैव बना रहता है। पहाड़ ने लोक स्वभाव, लोक जीवन, लोक भाषा तथा लोकचिंतन को हर काल में प्रभावित किया है। फलस्वरूप उसके अनेक मनोहारी रूप उभरे हैं जिनमें सरसता, स्वच्छन्दता तथा सनातनता है। प्रार्थी ऐसे ही वातावरण में जन्में, पले, बढ़े और जीये थे। अत: इनके काव्य के दो धरातल हैं—(क) लोक चेतना संबंधी काव्य (ख) दार्शनिक चिन्तन संबंधी काव्य।

साहित्य युग सापेक्ष होता है। उसमें युग चेतना बोलती है। ये दोनों सत्य प्रार्थी के पहाड़ी काव्य में अक्षरश: दिखायी देते हैं। वे जहां जन्में, पले, खेले और जीये वहां के प्राकृतिक पर्यावरण और लोकजीवन ने उन्हें पूरी तरह प्रभावित किया। उनके क्षेत्र का आदमी अनेक सामाजिक नैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक विषमताओं से घिरा था, जिसका सीधा प्रभाव उनके मन-मस्तिष्क पर पड़ा। उसके भीतर का कवि आकुल हो उठा। फलत: उन्होंने लोक में सामाजिक, शैक्षिक तथा राजनैतिक चेतना जागृत करने के लिए पहाड़ी (कुल्लूई) भाषा में काव्य रचा। उन्हें अपनी धरती से अमिट स्नेह था। प्रकृति का हर दृश्य उनका मन मोह लेता। वे गा उठे थे :—

देशा-देशा न शोभला, देश कुल्लू म्हारा।
आसे सीऐ तीतरू, चाकरू ऐ बगीचड़ू म्हारा।

वैसे तो सारी धरती सौंदर्य भरी है, परंतु मेरा कुल्लू सबसे सुन्दर है। हम तो इस आकर्षक उपवन में तीतर-चकोर की भान्ति स्वतंत्र घूमते गाते मस्ती भरा जीवन व्यतीत करते हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा उसे गांव-गांव घूमकर लोगों को सत्वर सुनाया भी, जिससे उनका काव्य लोक कंठहार बन गया। उनके रचे बहुत सारे गीत आज लोक गीत बन गए हैं।

उनके काव्य में सामाजिक सांस्कृतिक तथा शैक्षिक जन जागरण की तीव्र भावना मिलती है। सपाट ब्यानी इनके काव्य की मूल विशेषता रही, जो जनमानस पर सीधा प्रभाव डालती लोकप्रिय बनती गयी। वे मनोबल के धनी थे। जीवन की विकट परिस्थितियों में हंसते-गाते जीने की शक्ति उनमें थी। वे कृषकों, दलितों, मजदूरों को हर स्थिति में हिम्मत से डटकर सामना करने की प्रेरणा देते। जैसे :—

हिम्मत केरिया आपणे देशा री,
बिगड़ी दशा सुआरनी आसा।

हौंखडू मीटिया, टुम्बले पौड़िया,
वेशिया गप्पा नी मारनी आसा।

हमें परिश्रम करके अपने देश की बिगड़ी दशा सुधारनी है। आखें बंद कर, टांग पसार कर, बैठकर, गप्पें नहीं मारनी हैं। स्वार्थी लोग मीठी-मीठी बातें बनाकर हमें लूटते हैं, अब हम अपनी बैल जोड़ी बेचकर रीति रिवाजों के अन्धे रास्तों पर नहीं चलेंगे। हमें इतनी बात अवश्य विचारनी है। उन्होंने जोर देकर कहा :—

जुगे रे बेहरी मित्तर बोणिये,
लुटदे रौहे, लपो चंद लागै।

ऐबे नी सौंहदा बौलद बेचिया,
एतरी गल बचारनी आसा।।

हमें अपने शत्रुओं को मित्र बनाना है। हमें अपनी संस्कृति को जीवन्त रखना है, परन्तु उसमें समय प्रभाव से आई रूढ़ियों को त्यागना है। हमारा सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास तभी संभव है। वे अपनी संस्कृति के सबल पोषक थे। लोकाचार को किसी भी मूल्य पर न छोड़ने का आग्रह उनकी कविता का विशिष्ट अंग रहा :—

बूझिया आसा वे माड़े नमाड़े,
टोपी नी शिरान टीवणो धीने।

देउआ सी देवी रे गामरू, आवरू,
एंडे नी एबे पतारनी आसा।

वे अपनी धरती के दु:ख-दर्द और मजबूरियों से भली-भांति परिचित थे। उन्होंने वहां का यथार्थ जिया था, आम आदमी उनके बहुत करीब था। पहाड़ी जनमानस के दु:ख-दर्द का मूल कारण अपढ़ता है जो परंपराओं

के अंधानुकरण तथा दीन, हीन उपेक्षित जीवन जीने को विवश करता है। उनके काव्य में ऐसे जीवन को विकसित करने के अनेक सन्देश हैं। उन्होंने अपने अनुभूत यथार्थ को अपनी भाषा में नये ढंग से कहने का प्रयत्न किया :—

सुख नी बोलिया उथड़े रौहणा,
दुख नी बोलिया रोणा-कलाणा।

जेतरी आपणे पाले न चादर,
तेतरी जौंघा पसारनी आसा।।

सुख केवल आशा करने या कहने मात्र से नहीं मिलेगा, न ही दु:ख रोने धोने से दूर होता है। हमारे पास जितनी लम्बी चादर हो, हमें उतने ही पांव पसारने चाहिये।

पहाड़ी प्राकृतिक सुषमा, भौगोलिक स्थिति के रम्यचित्रण के अतिरिक्त अपनी मिट्टी, भाषा, संस्कृति भी उनके काव्य के मुखर स्वर रहे :—

चम्बा, कुल्लू, कांगड़ा, कनै जम्मू इक देश ओ।
ऊना, देहरादून हिमाचल प्रदेश ओ।।

इक म्हारा खाणा-पीणा, इक परोआर ओ।
इक रहणा-बहणा एक अंगण दुआर ओ।।

इक लग चार इक आदरा पलेस ओ।
ऊना, देहरादून हिमाचल प्रदेश ओ।।

राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से उनके मनमें एक विशाल हिमाचल प्रदेश की धारणा रही जिसे वे अपने काव्य में वाणी देते रहे। भाषा, संस्कृति, खान-पान, लोकाचार, भाईचारे की दृष्टि से जो क्षेत्र एक हैं उन्हें मिलाकर एक पहाड़ी प्रदेश बना दिया जाये। वे इस संकल्प की पूर्ति के लिए जीवन पर्यन्त संघर्षरत भी रहे। ऐसे कथ्यों को उन्होंने ऐसी मधुर-सरस तथा अपनेपन से पूर्ण भाषा में कहा कि वे कालांतर लोक भावनायें बनकर लोकगीतों के रूप में लोकमानस में बिखरते परंपरित हो गए।

वे श्रृंगार प्रिय रसिक गायक थे। पहाड़ी सौंदर्य के विध रूप उनके दृश्य में अति गहरे उतरे थे। उन्होंने प्रकृति का मानवीकरण भी खूब किया है। कुल्लूई लोकनारी के रूप-चित्रण की एक झलक देखिये :—

''मनूरी मनाली देखी, थीपू लौंगा वाली देखी।
ठोडी तिल्ले वाली देखी, बधिया शंगार थीया।।

गोखड़ू कनबीचे, कण्ठी, कांगणू सजाई करी।
फूलदार पाट्टू बान्ही, गले चन्दरहार थीया।।

चाल ढेढ़ी-मेढ़ी जे, जलेबी जाण पाकुली।
थम्मी जाओ लब्बे लग्गे, बूटड़ी दियार थिया।।

इहां मटकोए-मचकोए मुड़ी मुहें फेरी।
झण-झण जाए जिहां, बजदी सतार थिया।।

एकी-एकी हाखड़ू रा मुल्ल लख-लख हुंगा।
दाड़ुआं रे दाणे सांही, ददा री कतार थिया।।

लौंग लशकारे मारे, हवा रे इशारे सारे।
इसा लग्गै जिहां कोई, बिजली री तार थिया।।

खाखड़ू गुलाबी होठ, पतले उनाबी बांके।
हेरने रा रंग-ढंग, तीर तलुआर थिया।।

होश मैं गुआई बैठा, रोश करां कुदे कने।
बोलूआं मैं बिजली, पर लोक बोला नार थिया।।

ऐह गई, ओह गई, बढ़दी ही चली गई।
समझ नि आई चन्दा, नार कि कटार थिया।।"

मैंने मनू की मनाली क्या देखी थीपू-लौंग पहने एकं खूबसूरत स्त्री देखी। उसकी ठोडी पर काला तिल था, जो बढ़िया सजी-धजी थी। उसने गोखड़ू-कनबीचे, कंठी, कंगन पहने थे, फूलदार पट्टू बांधा था और गले में चंद्रहार था। उसकी टेढ़ी-मेढ़ी चाल ऐसे लग रही थी मानो जलेबियां पक रही हो, वह ऐसी पतली लम्बी थी जैसे देवदार खड़ा हो। वह मचल-मचल कर चलती मुड़-मुड़ कर देखती, ठुमक-ठुमक कर जाती जैसे सितार बज रही हो। उसकी एक-एक आंख का मोल लाखों होगा, अनार दानों सी उसके दांतों की कतारें थीं। उसका हवा में लिशकता लौंग ऐसे इशारे कर रहा था मानो बिजली की तार का करंट लग रहा हो। उसके गुलाबी गाल, पतले उन्हावी सुंदर होंठ और उनका देखने का ढंग क्या, वह तो तीर, तलवार थी। मेरे तो होश गुम हो गए, मैं अपना दु:ख किससे कहूँ मैं कहता कि वह तो बिजली है परंतु लोग कहते-नहीं, वह तो एक स्त्री है। यहां गई, वहां गई, काटती ही चली गई। मुझे समझ नहीं आई, वह नार थी या कटार थी।

देव धरती कुल्लू की लोक नारी के अद्वितीय सौंदर्य की स्थानीय रूपकों और प्रतीकों में सशक्त काव्यशैली द्वारा व्यंजना करना उन की काव्य सृजन कुशलता, गंभीर चिन्तन, भाषा की सही पकड़ तथा अभिव्यक्ति की सहज संवेदना का समर्थन करता है। उनका संपूर्ण काव्य अनुभूति की तीव्र प्रतीति कराता पाठक के हृदय में तदनुरूप भावों का पूर्ण बिम्ब उभारने में सफल सिद्ध होता है। रूपक तथा प्रतीक प्रयोग सहज और आंचलिक हैं। उनके काव्यचिन्तन पर वेदान्त तथा सूफी मत का प्रभाव रहा। श्रृंगार वर्णन के उपरोक्त दृश्य में भी उस

परम ब्रह्म के स्वरूप की ही व्याख्या प्रतीत होती है।

उनके काव्य का अनुशीलन करने पर ऐसा लगता है कि उन्होंने जिन्दगी और मौत को निकट से देखा था। जीवन की सही और सच्ची अनुभूतियां ही उनके काव्य का प्राणतत्व हैं। जीवन की निस्सारता, अस्थिरता, क्षणभंगुरता की व्यंजना करती एक कविता के कुछ अंश देखिये जो ''झूरी'' शैली में हैं :—

फूके री जिन्दड़ी काया नमाणी,
मौरना, जीणा सा केथ पराणी।

झूरी की बैठी धाऊड़ी बौता,
लानी नी ता पूंघा पजानी।

विधि रा लिखा लपोचीदा नाई,
अकल वाणा सा सींधी सियाणी।

भोले संसारा न केतरे जीणा,
जीआ न केतरे जान बचाणी।

पौतर डूबणे, तौरनी शीला,
जुगा रो धरम देउए री वाणी।

चन्दैरी चिंदड़ी भूल भुलेखा,
सुपना चुटना, रात भेंयाणी।

'काया में प्राणवायु है तो जीवन्तता है, ज्यों हि प्राण वायु निकल जाती है, शरीर मिट्टी हो जाता है। गतिशीलता ही जीवन है। विधि का विधान मिटाने में कोई समर्थ नहीं, इस तथ्य को सभी ने स्वीकार किया है। युग धर्म और देवता की वाणी ही सत्य है। उसी की समर्थ से पत्ते डूब जाते हैं और शिलायें तैरने लगती हैं। जिन्दगी तो एक भूल भूलैया है, जैसे आंख खुलते सपना ओझल हो जाता है। उन्होंने जिन्दगी का काफी भाग बीमारी से झूझते हुए बिताया। वे जीवन की निस्सारता को अच्छी तरह समझ चुके थे। इसे यमराज के पंजे से कब तक बचाया जा सकता है।

सांसारिक मनुष्य की व्यवहारिकता पर भी खूब लिखा है। विरोधी स्वभाव वाले व्यक्ति की प्रकृति को रूपायित करती ये पंक्तियां देखिये :—

पाषियां बछोड़ी म्हारी मितरी पराणी ओ।
अग्ग दिन्दे इक्की हत्थे, दुऐं हत्थे पाणी ओ।।

विपरीत स्थितियों में जीना बड़ा विकट है। मन मुटाव भरी जिन्दगी व्यर्थ है। मान मर्यादा भरा जीवन ही

सार्थक है। इनके बिना जीना मृत्यु के समान है इन्हीं भावों को रूपायित करती ये पंक्तियां देखिये :—

रही नी हुण्दा जित्थू दिल नीयों मिलदा।
सेही वि नी हुन्दा जुण दन्द रहे हिलदा।।

सूने रा संगार कही मुल नी ओ खिलदा।
मान तां मरयादा बाझी मरना हमेस ओ।।
राजी रहणा बणना जद पहाड़ी परदेस ओ।।

इसीलिए एक संस्कृति, एक भाषा, एक लोकाचार वाले क्षेत्र को मिला कर वे पहाड़ी प्रान्त की परिकल्पना करते रहे। भोगौलिक सीमाओं में सीमित रह कर जीना किसी भी दृष्टि से सार्थक एवं मूल्यवान नहीं। पहाड़ी जनमानस में पहाड़ी प्रदेश की कितनी लालसा है, प्रतीक्षा है, उसे उन्होंने व्यास, सतलुज की अजस्र जल लहरियों से बड़े सुन्दर ढंग से रूपायित किया है :—

व्यास, सतलुज दा कदी नीर नी सुकदा।
पहाड़ियां दा जोश से उफान वी नी रूकदा।।

पहाड़ी परदेस वाझी झगड़ा नी मुकदा।
झूठे-मूठे बन्नेआं दी देणी पट्टी म्हेस ओ।।

पहाड़ी जनमानस में सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक चेतना जगाना इनके पहाड़ी काव्य की मूल चेतना रही। उन्हें सम सामयिकता की पूरी पहचान थी जिसे उन्होंने अपने समस्त काव्य में सही ढंग से रूपायित किया है। देवधरती कुल्लू में जन्म पाना, पलना तथा युवा होने का अवसर उन्हें प्रकृति विविध रंग रूपों से संपर्क के अवसर जुटाता रहा, फलस्वरूप उनके काव्य में प्रकृति का मानवीकृत रूप अनेक बिम्बों व प्रतीकों के रूप में उभरा है। वे एक यथार्थ-वादी रचनाकार थे। सही रूप में एक कलाकार की भान्ति जीवनयापन किया। वे एक वरिष्ठ मंत्री के रूप में कम और एक सच्चे साहित्यकार और कलाकार के रूप में अधिक लोकप्रिय रहे। आज भी जब कहीं साहित्यिक सांस्कृतिक मंच लगता है, उनके नाम होंठों पर सहसा उतर आता है। भाषा, संस्कृति एवं साहित्य की धूमिल पड़ रही रेखायें पुन: उभरने लगती हैं। उनका पहाड़ी में रचित साहित्य कम उपलब्ध है परन्तु जो मिलता है वह उनकी पहाड़ी काव्य रचना समर्थ का सबल सबूत है। जो लिखा है स्वानुभूत है, जीवन्त है।

प्रकृति के मनोहारी पर्यावरण, उन्मूक्त सामाजिक परिवेश, सच्चे मानव सौंदर्य की निकटतम अनुभूति ने उन्हें रोमांटिक कवि बना दिया परंतु जीवन के परवर्ती सोपान पर ज्यों-ज्यों उनकी अनुभूति तीखी होती गयी काव्यचिंतन में उत्तरोत्तर गंभीरता आती गयी। इसकी गहन तथा व्यापक व्यंजना उनके उर्दू काव्य में मिलती है। उनके काव्य में लोक मंगल की भावना है लिससे वह उनके जीवन में ही-जन-जन का कंठहार बना। गंध, रसयुक्त वाणी ने भीगे हुए यथार्थ को खूब व्यक्त किया सही तथा सधे-सटीक शब्दों में इनकी कविता काल्पनिक एवं ऐन्द्रिक प्रभाव पूर्ण अधिक है परन्तु वह वैयक्तिक भावों का उच्छ्वास न होकर समूचे लोक की कविता है जिसमें आम आदमी की आशा-निराशा, गरीबी, भूख, सुख-दु:ख, संघर्ष तथा वेदना व्यक्त हुई है। उनके काव्य में

प्रणयी हृदयों का सनातन स्पन्दन है। समस्त पहाड़ी लोक जीवन , वहां की जीवन पद्धति, संस्कृति, परम्परा, आदर्श एवं वहां का लोक क्या भोगता है, सभी कुछ तो उनके काव्य में है। उन्हें संगीत से प्रेम था। वे अपना काव्य गाकर ही सुनाते। बचपन में कुल संगीतज्ञों की संगत का गहरा प्रभाव था। वे शब्द प्रयोग तथा उसके अर्थ संदर्भो से बखूबी परिचित थे। उन्होंने पहाड़ी कविता में लोक छन्दों का प्रयोग किया जिन में लामण, झूरी, हार आदि लोकप्रिय हैं। उनके काव्य में अभिव्यक्ति का स्वच्छन्द प्रवाह है एक सहज अपील है। आज भी उनके काव्य प्रेमी उनकी कविताओं को गुनगुनाते सुने जाते हैं। अधिकांश रचनायें तो लोक गीत बनकर कुल्लुई लोकमानस में व्याप्त हो गई हैं।

उर्दू काव्य उन्हें अपने उर्दू काव्य को भी संकलित संपादित कर प्रकाशित करने का संयोग नहीं मिला। जो कुछ बहुत पहले पत्र-पत्रिकाओं में छपा वह भी सुगम-सुलभ नहीं हो सका। उनको यह तीव्र लालसा रही कि उनकी रचनायें ''बजूदो अदम'' नाम से किसी पुस्तक में जरूर छपें और पाठकों तक पहुंचे। ऐसी इच्छा को वे 'सागर पालमपुरी' के नाम लिखे खतों में समय-समय पर व्यक्त करते रहे। सागर साहिब उनके निकटस्थ मित्रों में से एक हैं। उनके पत्रों में घरेलू सुखसान्त का जिकर न होकर हर नयी ग़ज़ल जो वे लिखते, पत्राचार द्वारा उस पर राय मांगते। यह पत्र व्यवहार उनके जीवन के अंतकाल तक रहा। इसी सिलसिले में उनके पास एक सौ से अधिक पत्र एकत्रित हो गए जिनमें उसकी ५४ गजलें सुरक्षित हैं।

उनके उर्दू साहित्य में दिए योगदान की उपादेयता एवं आवश्यकता महसूस करते हुए हिमाचल प्रदेश भाषा-संस्कृति अकादमी द्वारा यह निर्णय लिया गया कि उनके काव्य को संकलित कर प्रकाशित किया जाए। वर्ष (१९८४) में इस कार्य के लिए ''सागर साहिब'' को कहा गया। उन्होंने उनकी ५४ गजलों को सात पृष्ठों की भूमिका सहित ''बजूदो अदब'' नाम देकर सम्पादित किया, जो अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया है।

उनका रचित साहित्य कुछ मिले, मैं दो बार उनके घर ''नग्गर'' (कुल्लू) गया उनके निजी पुस्तकालय की अलमारियां तलाशने पर कुछ डायरियां हाथ लगीं जिनपर कुछ पूरी-अधूरी गजलें और नजमें पढ़ने को मिलीं। कुछ खास पुस्तकों के पन्नों पर भी कुछ शेर या गजलें लिखी मिलीं। उनके कवि से, एक ही मंच पर, मेरा साक्षात्कार भी लगभग सोलह वर्ष तक निरंतर होता रहा। ऐसे अवसर पर उनके काव्य के कथ्य एवं शिल्प के प्रति बने बिम्ब, उपरोक्त सम्पादित संकलन तथा डायरियों में बंद रचनाओं को पढ़ने से और भी तीव्रतर हो उठे। उनका समूचा कवि व्यक्तित्व स्पष्ट हुआ।

स्वानुभूति को मुखरित करने के लिए जब कभी महान कवि बुद्धि और विचार चेतना की दिशाओं के बिखरे हुए भावतत्वों को भावावेश के स्नेहिल आत्यंतिक प्रवाह से एकरस कर देता है तो उसी गत्यात्मकता से प्रकृति और आकृति की भावमयी स्वरूपावस्था का नये सिरे से अभिनव निर्माण होता है। उसी ही निर्मित के गंभीर सागर से जीवन के गतिशील रचनात्मक मूल्यों का प्रादुर्भाव होता है जिन्हें चुनकर वस्तुतः कोई भी महान कवि जीवन के नये मूल्यों की जागृति को उत्पन्न करता है। तभी वह सही अर्थों में नये जीवन का और उसकी मूल्यवत्ता का मार्गदर्शक बन पाता है। यही कारण है कि गजल कहने वाले कवि का आंतरिक अनुभव भावातिरेक के अतिरिक्त किसी दूसरे अनुभव को सहन नहीं करता और वह अपने भावगांभीर्य को रहस्यपूर्ण गूढ़ दिशाओं को सांकेतिक या प्रहेलिका मूलक शब्दावली में व्यक्त करता है।

उनके काव्य का अनुशीलन करते हुए डॉ० वेद प्रकाश 'अग्नि' ने लिखा है फारसी उर्दू, की ग़ज़लों में

रहस्यपूर्ण गूढ़ सांकेतिकता विश्व साहित्य की अनूठी वस्तु है। डा. इकबाल ने इसी भावतिरेक और मस्ती की अनुभूत दशा को 'शानेकलंदरी' कहा है। इसे ही मर्देमोहिन का विर्सा कहा है। प्रार्थी में भी इसी प्रकार की सांकेतात्मिकता के द्वारा जीवन की पूर्णता की प्राप्ति के संकेत मुखर हुए हैं।

दिलों के फासले कुछ कम करो खुदा वालो।
नमाजे जिन्दगी किरदार के सिवा क्या है।।

जीवन की सही पूजा कर्म में निहित है। सच्चे तथा अच्छे कर्म से बढ़ कर संसार में अन्य कुछ भी सुखद एवं शान्तिप्रदायक नहीं।

जो तूफां को साहिल समझें
और लगज़िश को मंज़िल जाने।
वो गम को मदावां क्यों न कहे
हर दरद को दरमा क्यों न कहें।।

वास्तव में संघर्ष ही जीवन है। इसके बिना जिन्दगी में गतिशीलता नहीं आती। जो लोग इससे घबरा कर अपना मन हार जाते हैं, वे जीवन के स्वाद से वंचित हो जाते हैं। संसार का आसक्त जीव अपने कर्म व्यापार को (असद कर्म को) भगवान की नजरों से छुपाता तो है परंतु उसके हृदय दर्पण में सर्व व्यापक विभू उसके संपूर्ण कृतित्व को अच्छी तरह से भांप लेते हैं।

दिल वो शीशा कि देखें तो नजर लगती है।
मैं छुपाता ही रहा तूने मगर देख लिया।।

ईश्वरीय प्रेम की सच्ची अनुभूति मनुष्य के भीतर सुख-दु:ख के अंतर पाट देती है। उसमें समदृष्टि का विकास एवं विस्तार होता है। ईश्वरीय वासंती छटा का प्रभाव दु:ख को दु:ख अनुभूत होने ही नहीं देता :—

देखा है जब से चांद बहारों ने इक नजर।
कांटें भी फूल बन गए, गुजरे जिधर से हम।।

वास्तव में उनके काव्य पर वेदान्त, सूफीवाद और इकबाल के चिन्तन का प्रभाव रहा जो स्वानुभूति से तीव्रतर हो उठा। जीवन के अंत में उनका आत्मचिंतन आत्मलीनता के चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया था। उपासना उनके जीवन का अभिन्न अंग रहा। जिससे उन्हें जीवन का यथार्थ बोध मिला अंत-दृष्टि का सही विकास हुआ।

कौन कहता है कि मर जाता हूँ मैं।
धूप ढलती है तो घर आता हूँ मैं।।

जीवन क्षण भंगुर और अवसाद पूर्ण है, बेशक दूर से रंग, रस भरा आकर्षक लगता है :—

जिन्दगी दूर से थी कितनी सुहानी लेकिन।
पास आयी तो लगती है बबालों की तरह।।

परन्तु जीवन उदास होने से नहीं कटता, उसे जीने में ही सार्थकता है। अत: अनुभूति एवं प्रतीति के मीठे-कड़वे स्वाद लेने में ही मजा है :—

ऐ चांद इस जहान में रहना तो है जरूर।
अच्छी हमें लगे न लगे इस जहान की बात।।

जीवन के प्रति आशावादिता के इसी भाव को लेकर उन्होंने खूब कहा है। कुछ शेर यूं है :—

चांद अगर हम हैं तो खुरशीद दरख्शां तू है।
रोशनी पाने को हम तेरे नगर तक पहुँचे।।

चमन से दूर उफक के करीब सहरा में।
खज़ा का फूल भी खिलता दिखाई देता है।।

उनका चिन्तन अद्वैतवादी था। आत्मा को परमात्मा का अंश मानते। उन्होंने अपने उर्दू गजल का नाम भी ''बजूदो अदब'' (जीवन-मरण) रखा था।

वे रसिकता की साकार मूर्ति थे। लौकिक प्रेम की अनुभूतियां उनके गजल साहित्य का विशिष्ट अंग हैं। इसी मार्ग से गुजरते हुए उन्होंने पारलौकिक प्रेम की ऊंचाईयों का संस्पर्श किया है। वस्तुत: लौकिक प्रेम एक विश्वग्राही भाव है जिसका विस्तार असीम और रंगीनियां अनंत हैं। चांद कुलुवी ने इस क्षेत्र की रंगीनियों को जी जान से जिया, संजोया और गजल की लड़ियों में पिरोया है। इसीलिए उन्होंने इस क्षेत्र के उपवन से भावभीनें कुछ पुष्प चुने जिनकी महक स्फूर्ति और शक्ति दिल की गहराईयों में नयी हलचल पैदा कर देती है। इस संदर्भ में कुछ शेर देखिये :—

तेरे इस चांद से माथे पे पसीना कैसा।
अजनबी तेरे ख्याल में आया तो नहीं।।

मेरी हर बात पर वो मुस्करा कर बात करते हैं।
मगर है काम की जो बात, वो मानी नहीं जाती।।

क्यों वक्ते सफर देख लिया प्यार से तुम ने।
हर तारे नजर पौं की जंजीर लगे हैं।।

तेरी इक नज़र ने ऐसा देखा कि वहीं के वहीं रह गये और उसका प्रभाव देखिये :—

न जाने कब से बैठे हैं गमे हिज्रां लिए दिल पर।
न तुम आये न खत आया, न नींद आयी, न ख्वाब आये।।

सच्चा स्नेह भी कितना विचित्र होता है :—

टांग देता है जान सूली पर प्यार कितना अजीब होता है।
याद करता है जब कोई चांद, दर्द दिल के करीब होता है।।

उसे देखने, ढूंढने की तलाश हर दम लगी रहती है, उससे बतियाने को मन तड़पता रहता है :—

हर तरफ चेहरों की कसरत में जो ऐ चांद।
उसका चेहरा भी उभर आये तो कुछ बात बने।।

स्नेह भरी नज़र का कोई विकल्प नहीं है। भला प्यार का बदला भी किसी वस्तु से चुकाया जा सकता है :—

आपके वास्ते लाने को नहीं था कुछ और।
मेरी आंखों में है कुछ प्यार के गौहर देखो।।

प्रार्थी जी ने जीवन को उन्मुक्त भाव से भोगा है। इनके काव्य में जीवन के प्राय: सभी पक्षों की मधुर और तिक्त अनुभूतियों की तटस्थ काव्यात्मक अवतारण हुई है। उन्होंने जीवन के सामान्य स्तर से लेकर वैभवपूर्ण स्तर की चकाचौंध भरी जिन्दगी का अनुभव किया था। वैभव के वातावरण में व्याप्त भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, उपेक्षा, दंभ कृत्रिमता और खोखलेपन से पूर्ण जीवन की स्थितियों के प्रति उनकी तीव्र वितृष्णा मुखरित हुई है। दूसरी ओर उपेक्षित एवं सामान्य जीवन की कहानी सादगी ईमानदारी और सच्चाई से भरी निश्छल स्नेहिल अन्त:करण की भरपूर मानवतामयी छटा का भी उन्होंने अवलोकन किया था। इसीलिए उन्होंने वैभव-ऐश्वर्य के स्तर से नीचे झलकती हुई सपाट, सादा स्वच्छ जीवन धारा का समर्थन किया है। वे आध्यात्मिक अनुभूति रहित ऐश्वर्य पद को नकारते हैं :—

मेरा शहूर मेरी हकीकत, मेरा बजूद।
कुछ भी नहीं है शान के शायां तेरे बग़ैर।।

ऐश्वर्य के जीवन का रास्ता वास्तव में भ्रष्टाचार की जिन मंज़िलों से होकर, गुज़रता है उसका प्रत्यक्ष अनुभव सत्य हृदयी प्रार्थी को बराबर कचोटता रहा :

आंख नम होने लगी देख के दुनिया का चलन।
जोशे बहशत[1] भी नदामत[2] की नजर मांगे है।।

वे वर्तमान अवस्था के भ्रष्टाचारी रूप से निराश से हुए प्रतीत होते हैं :—

खुशी की बात मुक्कदर से दूर है बाबा।
कहीं निजाम में कोई फतूर है बाबा।।
भरी बहार में बैठे हैं हम अलम बकनार[3]।
जरा बता कि यह किसका कसूर है बाबा।।

वे व्यावहारिक दिखावा, बहुरूपियापन, धोखा-फरेब और पहाड़ों के परिश्रमी दारिद्रय भरे जीवन के प्रति सदैव संवेदनशील रहे। उन्हें जीवन की तिक्त अनुभूतियों को साफ-साफ कहने का ढंग आता था :—

नये शऊर के तपते हुए अलाव में साफ।
हर इक जिस्म पिघलता दिखाई देता है।।

वैसे भी उन्हें अपनी मातृभूमि का कण-कण देवता महसूस होता। वे तो युग-युगों से योग-मुद्रा में स्थित गिरिश्रृंगों, अविरल जललहरियों में इठलाती बहती नदियों, ध्यानस्थ खड़े चीड़ देवदार के वृक्षों तथा दूर्वादल में भी उस परमसत्ता, परमशक्ति, परमेश्वर का आभास पाते। ऐसी अनुभूति की अभिव्यक्ति यूं हुई है :—

पत्थर की मूर्ति में समझा है तू ख़ुदा है।
ख़ाके वतन का मुझ को हर जर्रा देवता है।।

उनमें एक अच्छे तथा सच्चे कवि के गुण विद्यमान थे। उनके काव्य में सरकारी नीतियों की भी तीखी व्यंजना मिलती है। वे स्वयं अपनी आलोचना करने में भी पीछे नहीं रहे। कुछ शेर देखिये :—

ख़ुशी की बात मुकद्दर से दूर है बाबा।
कहीं निज़ाम में कोई फतूर है बाबा।।

तथा

जो लगाते हैं आग गुलशन में।
वे कभी बागवान नहीं होते।।

वक़्त की गर्द ने दीवार पर जो लिखा है।
आओ, ज़रा इसको भी तो पढ़ कर देखें।।

जीवन के तीखे अनुभव, स्वार्थी रिश्तों की अवसरवादिता, दोस्ती के विभिन्न रंगों के चित्र भी उनके काव्य में सहजता से उपलब्ध हैं। ये शेर देखिये :—

ये कैसा वक़्त भला हम पे आने वाला है।
हमारे दोस्त ही हमसे नज़र बचा के चले।।

इक लम्हा भर को चांद पे आंखें हुई थी बंद।
देखा तो जागने पे, कि इन्सां बदल गया।।

जब तक वे मन्त्रिमंडल में रहे, चार पहर उनकी कोठी पर मिलने वालों, दोस्तों, प्रशंसकों की कतारें लगी रहतीं। ज्यों ही वे कुर्सी से उतरे, सभी काफूर हो गये। बीमारी के दिनों में भी बहुत कम लोग उनकी खबर लेने जाते। ऐसी स्थिति में उनका ऐसा महसूस करना, कहना व्यक्तिगत सत्य ही नहीं, युग सत्य है जो झुठलाया नहीं जा सकता। उनके काव्य की विवेचना करते श्री ललित शबाब ने लिखा है—

'वे बुनियादी तौर पर एक शायर और कलाकार थे। सियासी मसरू फियात और सरकारी फायलों के अम्बार के दरम्यान भी इनके अंदर का शायर ज़िन्दा, सदाबहार और जवान रहा। उन्होंने आधुनिक शायरों में एक निजी और गरिमामय स्थान प्राप्त किया। वे निरंतर अभ्यास तथा गहन अध्ययन के फलस्वरूप एक काव्य कुशल कवि के रूप में उभर कर जनता के सामने आये। उन्होंने बहुत बढ़िया ग़ज़लें कहीं हैं। भारत की उच्चस्तरीय उर्दू पत्रिकाओं तहरीक, शायर, बीसवीं सदी आदि में इनकी रचनायें प्रकाशित होती रही हैं। चांद साहब के कलाम में जहां 'इश्के-मजाजो' के किस्से और रंगीनी-ऐ-शबाब के अफसाने हैं, वहीं उनके साथ-साथ 'इश्के हकीकी' के रमूज व हयान के इसरार रूह और जिस्म के तालुक की असल हकीकत इन्सान और

खालिक के वाहमी अज़ली अब्दी रिश्ते का उनका तसब्बर और हयात व मौत के (फलसफे का कामिल बज़दान) भी कारी को चौंकाते हैं। जैसे ये 'शेर' देखिये :—

मिल गये संगम पर आकर और समंदर हो गये।
एक दरया रूह का था एक दरया जिस्म का।।

फना से दूर सितारों की वादियों से हमें।
वह कौन है जो बुलाता दिखायी देता है।।

उर्दू भाषा से वे आरंभ से ही जुड़े रहे। जन्म भूमि, देव भूमि, कुल्लूत केसरी आदि साप्ताहिक-मासिक पत्र पत्रिकाओं के कई साल तक सम्पादक रहे। उर्दू में शेर कहने की शुरुआत लाहौर में विद्यार्थीकाल से हो गयी थी। वहां के साहित्यिक माहौल ने इनके भीतर के शायर को विकसित होने का पर्याप्त अवसर दिया। आरंभ में जनाब 'गुलशन नदोनवी' और जनाब भगवानदास 'शोला' से मार्ग दर्शन पाते रहे। जिससे उनमें शेर सोचने तथा लिखने का सही तरीका हासिल हुआ। गज़ल इनकी प्रिय विधा रही जिसका कारण इनका बचपन से नृत्य-संगीत के साथ अटूट संबंध था। उन्होंने स्वयं एक स्थान पर प्रेमकुमार नज़र से वार्तालाप करते हुए कहा है— 'मेरा मिज़ाज लड़कपन से आशिकाना है। सबसे बड़ी वजह यह है कि गज़ल संगीत के बहुत करीब है और संगीत से जुनून की हद तक प्यार करता हूँ। फिर मुझे गज़ल में संक्षिप्तता का पहलू बहुत अच्छा लगता है। वैसे नज़म और दूसरी विधाओं में भी लिखता हूं।' (सोमसी : प्रार्थी विशेषांक)

समय के साथ गज़ल विधा में जो विषय एवं शिल्प के प्रयोगात्मक परिवर्तन आये उनसे वे पूरी तरह वाकिफ एवं प्रभावित रहे। उन्होंने गज़ल की इस तबदीली को कबूल किया था। उनके गज़ल साहित्य के शिल्प पर बात करते हुए शबाब ललित ने लिखा है—''इनके लब-ओ-लहजा की वही नरमी और हलावत इनके कलाम की इम्तियाजी खुसूसियत है। इनमें इनकी फितरी शोखी और चुलबुलाहट को भी दखल रहा और इनके अश्आर को जादू असर बना दिया है। दिलकश और पुरताशीर अशार उनके काव्य में जगह-जगह मिलते हैं।'

मैं तो यहां तक कहूँगा कि अनुभूति की तीव्रता, प्रतीति की व्यापकता, अभिव्यक्ति की मधुरता और भाषा की सरलता उनके काव्य के प्राण हैं जो उन्हें युग-कवियों की पंक्ति में खड़ा करते हैं। उन्होंने अपने जीवन को आहूत कर जिस ढंग से अनुभूतियों को रूपायित किया है, वह निस्संदेह साहित्य के लिए अनूठी देन है। हिमाचल के समकालीन कवियों में काव्य चेतना, काव्य सृजन, कथन अंदाज आदि के नये बोध जगाने में भी उनकी भूमिका चिरस्मरणीय रहेगी।

स्वतन्त्रता-संग्राम में हिमाचली साहित्यकारों का योगदान

डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा

स्वातन्त्र्य-यज्ञ में जब आत्माहुतियों के शब्द गूंज रहे थे, तब मात्र शाब्दिक स्वाहा करने वाले लोगों की संख्या शताधिक थी। परन्तु कुछ अगुंलिगण्य लोग ही थे जिन्होंने अपनी जान हथेली पर रखकर परतन्त्र माँ जन्मभूमि की श्रृंखलाओं को काटने का बीड़ा उठाया था, अपने सुख-साधनों, घर की ममता को तिलांजलि देकर स्वतन्त्रता का सच्चा जयघोष किया था। इस स्वतन्त्रता-संग्राम में भारत के विभिन्न प्रान्तों के साहित्यकारों ने भी सक्रिय हिस्सा लिया और अपने साहित्य में राष्ट्रीय चेतना जागृत कर साधारण जनता को इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। हिमाचल के साहित्यकारों के मानस पर भी स्वतन्त्रता संग्राम का प्रभाव पड़ा। यहाँ के साहित्यकार भी इस आन्दोलन में कूद पड़े और अपनी रचनाओं के माध्यम से जनमानस में नए प्राण फूंके। अस्तु, यहाँ के साहित्यकारों का स्वतन्त्रता-संग्राम में योगदान किसी से कम नहीं है। इनमें पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम, यशपाल, स्व० लालचन्द प्रार्थी, रूपसिंह फूल, बिशनदास गुलशन प्रभृति के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम ने भी स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग ही नहीं लिया अपितु स्वतन्त्रता सेनानियों के दल में सम्मिलित होकर देश के लिए मर मिटने का संकल्प भी लिया। सार्वजनिक सभाओं तथा जलूसों का प्रतिनिधित्व किया। ऐसे अवसरों पर जागरुक राष्ट्र प्रेमी की तरह ओजस्वी भाषण दिए। पहाड़ी (हिमाचली), पंजाबी तथा हिन्दी में स्वरचित गाने जैसे उनकी दिनचर्या का प्रधान अंग था। राष्ट्र-प्रेम तथा वीररस इनके गीतों का प्रतिपाद्य होता था। महात्मा गांधी, नेहरु और सरदार पटेल के स्वदेश प्रेम के सन्देश को अपने भाषणों तथा गीतों में ढालकर शिवालिक की पहाड़ियों में गाँव-दर-गाँव घूम कर गाते थे। गांवों में उन्होंने आजादी का प्रचार किया। ''अस्सां गुलाम नहीं रहणा'' कविता में लाख दु:ख सहने पर भी गुलाम न रहने की प्रतिज्ञा की गई है। भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी होने के बाद उन्होंने अपनी मानसिक व्यथा को प्रकट करते हुए एक लम्बी कविता लिखी—शाबाश हे बहादुरो ! जिना गलाया था, अस्सां जादी सिपाही हाँ। जादी दी लड़ाई लड़ीए। स्वतन्त्रता का दीवाना साहित्यकार केवल इतना ही जानता था भारत मां मेरी माता, वह जंजीर जकड़ी, वह अंग्रेजां पकड़ी, कांशी उसको आजाद कराणा है। इस प्रकार नौजवानों को सम्बोधित करके उन्होंने कहा है—हुण मन्नो गलाया कांशीए दा, डर रक्खो ना मनै च फांसीए दा, असां लैणा सुराज झट लोको, फिरी बसी कांगड़े देस जाणा। नानाजी दी कहानी को कथानक स्वतन्त्रता-संग्राम से सम्बन्धित है। अटक जेल में कवि ने स्वतन्त्रता सेनानियों की दारुण यातनाओं का स्वाभाविक चित्रण खींचा है। उन्होंने पहाड़ में एक साधारण परिवार में जन्म लेकर, ब्रिटिश सरकार से मोर्चा लेकर, अत्याचारों को सहकर जेल की कैद में रहकर पहाड़ी गांधी अपने लोकोत्तर जीवन के कारण कहाँ से कहाँ

पहुँच गए। यह उनके विलक्षण व्यक्तित्व से ही जाना जा सकता है।

यशपाल का स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान यशपाल स्वतन्त्रता संग्राम के अजेय तेजस्वी सेनानी थे तथा अपने समय के प्रमुख क्रान्तिकारी रहे हैं। स्वतन्त्रता-संग्राम के क्रान्तिकारी आन्दोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी रही है। क्रान्तिकारी संस्थान में सम्मिलित होकर वे क्रान्ति के पथिक बन गए और विप्लवी का धर्म और आदर्श निभाया। उनका जीवट जीवन हमारे स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास का एक प्रखर जाज्वल्यमान प्रकाश अंश है। वे हिमाचल के उन ख्याति-प्राप्त साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में बढ़ चढ़कर भाग लिया था तथा अपने जीवन को जोखिम में डालकर ऐसे असाधारण और साहसिक कार्य किए थे जिन्हें समाज के विरले लोग ही कर सकते हैं। उनका समूचा जीवन जनता और देश का जीवन था। अपने जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने देश की आजादी के लिए पिस्तौल और बम लेकर या फिर वर्षों जेल की काल-कोठरियों में अपनी कल्पना द्वारा जनता का सही विश्लेषण करते ही बिताया था। उनकी विभिन्न रचनाओं में स्वतन्त्रता-संग्राम से सम्बन्धित अनेक प्रमुख घटनाओं की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है।

उनके उपन्यासों में स्वतन्त्रता-संग्राम सम्बन्धी अनेक घटनाओं का उल्लेख हुआ मिलता है। सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन की कहानी में सन् १९२० से लेकर सन् १९४७ की राजनीतिक घटनाओं का अच्छा संकलन मिलता है। इन घटनाओं को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है—आतंकवाद, गांधी जी का राजनीति में आना और सर्वहारा वर्ग का राजनीति में सक्रिय होना। यशपाल का इन तीनों कालों से ही व्यक्तिगत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और यही उनके उपन्यासों का प्रमुख विषय है। दीर्घकाल तक परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण जितना संघर्ष और जितने आन्दोलन इस काल में हुए, उनका स्पष्ट उल्लेख प्रत्यक्ष या परोक्ष में उनके उपन्यासों में मिलता है। मुख्यत: हमें द्वितीय महायुद्ध, असहयोग-आन्दोलन, क्रांतिकारी आन्दोलन, स्वतन्त्रता प्राप्ति एवं भारत विभाजन आदि की समस्याएं उनके उपन्यासों में चित्रित हुई मिलती है। 'दादा कामरेड' में राष्ट्रीय संघर्ष की कथा है। यह संघर्ष अंग्रेजी साम्राज्यवाद और उसकी सहायक शक्तियों-पूंजीपति, सामन्त, जमींदार, पुलिस तथा संघर्षशील शक्तियों के बीच दिखाई देता है—संघर्षशील राष्ट्रीय शक्तियों के भी मुख्यत: दो रूप दिखाई पड़ते हैं—भारतीय क्रान्तिकारी दल और (२) गान्धीवाद सुधारवादी वर्ग। प्रस्तुत उपन्यास में संघर्ष मुख्यत: भारतीय क्रान्तिकारी दल और अंग्रेजी साम्राज्यवादी के बीच चित्रित हुआ है।

'पार्टी कामरेड' यशपाल के स्वयं के अनुभव की कहानी है। साहित्यकार ने जो क्रान्तिकारी, फरारी या जीवन व्यतीत किया, जीवन के कटु सत्य तथा परेशानियों को अनुभव किया, वही सब कुछ 'पार्टी कामरेड' की कथावस्तु है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजों के व्यवहार से क्षुब्ध होकर बम्बई के नौ सैनिकों ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया। देश की स्वाधीनता के लिए नौ सैनिकों का यह प्रदर्शन अभूतपूर्व था। इस घटना को केन्द्र में रखकर यशपाल ने पार्टी कामरेड की कथा निर्मित की है। 'देश द्रोही' उपन्यास सन् १९४२ की राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, भारत छोड़ो आन्दोलन तथा अन्य सामाजिक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि पर आधारित है। 'मनुष्य के रूप' की कथा का आधार द्वितीय विश्वयुद्ध के समय की राजनीतिक घटनाएं है। उपन्यासकार ने कथानक में गान्धीवादी मूल्यों पर भी प्रकाश डाला है। गान्धीवादी आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन अवश्य था, पर आन्दोलन में सामाजिक शोषण की चेतना का अभाव भी दिखाई पड़ता था।

यशपाल ने जिस काल में साहित्य-रचना आरम्भ की, उस काल में स्वतन्त्रता-संग्राम की लोक-प्रियता बढ़ती जा रही थी। दीर्घकाल तक परतन्त्राता की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण जितने संघर्ष और आन्दोलन उस काल में हुए उनका स्पष्ट चित्रण यशपाल की विभिन्न रचनाओं में प्रतिफलित हुआ है। यशपाल के जीवनकाल की पहली राजनीतिक समस्या देश को पराधीनता से मुक्त कराने की थी। जनसाधारण के मन पर अंग्रेजी राजसत्ता का इतना रौब जमा था कि 'अंग्रेज की फुंकार' सुनकर भूत भी सामने आने की हिम्मत नहीं कर सकता था। अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फैंकने का प्रयत्न करने वाले क्रान्तिकारियों को बुरी तरह मार दिया जाता था। इन क्रान्तिकारियों के प्रति शासकों के मन में प्रबल विद्वेष की मार थी। 'अंग्रेज का घुंघरन' कहानी इसी उद्देश्य को लेकर लिखी गई है। वे क्रान्तिकारी की कब्र पर मर्सा का साग उगाकर खाने में संकोच नहीं करते थे। उनके इस क्रूर रूप को देखकर साधारण हिन्दुस्तानी आतंकित हो उठता था। भस्मावृत की चिन्गारी संग्रह में 'साग' कहानी में, अंग्रेजों के इसी व्यवहार का चित्रण हुआ है। 'भसमावृत की चिन्गारी' संग्रह की 'वफादारी' की सनद कहानी में लेखक का कहना है कि किसी देश पर कोई विदेशी शासक तब तक राज्य नहीं कर सकता जब तक शासित देश के लोग अपने स्वार्थ के कारण शासकों के साथ वफादारी न निबाहें। अपने ही देश-बाधवों के विरुद्ध शासकों का साथ देकर वफादारी की सनद पाने वाले भारत में कम नहीं है थे। ये वफादार, लोग शासकों की भर्त्सना सुनकर भी वफादार बने रहते थे। 'वफादारी की सनद' कहानी में एक अंग्रेज अधिकारी ने एक वफादार से कहा—'अगर तुम हमारा मुल्क का आदमी होता, हम तुमको दगाबाज़ कहता और गोली मार देता', विदेशी शासकों के प्रति वफादार रहने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि वे तात्कालिक लाभ के लोभ में अपनी ही आने वाली पीढ़ियों का अहित कर रहे हैं। 'तमगे की चोट' कहानी के वकील साहब लोगों को 'अंग्रेजों की सेना में भरती कराकर 'केसरे हिन्द' का मैडल पा जाते हैं। वे अपने बेटे की भरती रद्द करा लेते हैं। किन्तु उनका बेटा उनकी इच्छा के विरुद्ध भरती के दूरस्थ केन्द्र में जाकर भरती हो जाता है। बेट की मृत्यु के समाचार से वकील साहब बेहोश हो जाते हैं। बेहोशी के टूटने पर वे अपने आत्म-सम्मान को बनाए रखने के लिए कह उठते है—'वरस अठारह छत्री जीवै, आगे जीने को धिक्कार।' कभी-कभी जिन्ना जैसे राजनीतिज्ञ मुसलमानों को अंग़ेज सरकार के प्रति वफादार बने रहने के लिए प्रेरित करते हैं। जिन्ना ने मुसलमानों को समझाया था कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है उससे मुसलमानों को दूर रहना चाहिए। अंग्रेज हाकिमें वक्त है। हाकिमे वक्त का सहयोग करना धर्म है। धर्म निरपेक्ष या धर्म-हस्तक्षेप न करने वाले अंग्रेज इस प्रकार के साम्प्रदायिक द्वेष को बढ़ाने वाले तत्वों को परोक्ष रूप से प्रोत्साहित करते थे क्योंकि अन्धविश्वासों में जकड़ी हुई एवं आपस में लड़ने वाली प्रजा पर शासन करने में सुविधा होती थी। 'खुदा की मदद', कहानी में इसी प्रकार के विचारों का प्रकटीकरण हुआ है। 'परलोक' कहानी में परलोक की चिन्ता के कारण साधारण आदमी इहलोक के शोषण और अन्याय को सह जाता था। इसका कारण भी लोगों को धर्म के अन्धविश्वास में गुमराह बने रहने देने में अंग्रेज शासकों का हित था।

तीन भागें में प्रकाशित 'सिंहावलोकन' यशपाल की आप बीती कहानी होने के साथ-साथ क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रामाणिक इतिहास भी है। यह सशक्त क्रान्ति के प्रयत्नों की गाथा है। संस्मरणों में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की हत्या का बदला लेने, देहली असम्बेली बम-काण्ड, वायसराय की ट्रेन को बम से उड़ाने की योजना, राजनैतिक बन्दियों को छुड़ाने के लिए, जेल पर आक्रमण की तैयारी, क्रान्तिकारियों

और पुलिस के आमने-सामने लड़ाई की घटनाओं का सविस्तार वर्णन यशपाल ने तीन भागों में किया है। वस्तुतः सिंहावलोकन आप बीती कहानी होने के साथ यह हिन्दी कथा-साहित्य की अमूल्य निधि और भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में आतंकवादी क्रान्ति की भूमिका का सही इतिहास है।

पत्रकारिता जिन दिनों पत्रकार और देश भक्त पर्यापयवाची शब्द बन गए थे, बुलेट से बुलेटिन के पथ पर पहुंचने वालों में कितने ही क्रान्तिकारियों का उल्लेख होता है उनमें यशपाल का भी विशिष्ट स्थान है। जेल से छूटने के पश्चात् नवम्बर, १९३८ को 'विप्लव' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ कर दिया विप्लव के प्रवेशांक के प्रथम पृष्ठ पर विप्लव नाम से नीचे उद्देश्य द्योतक वाणी थी— भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का अग्रसर मोर्चा जिसके साथ ये पंक्तियां जुड़ गई थीं— 'तुम करो शान्ति समता प्रसार विप्लव ! गा अपना अनल-गान।' साम्दकीय के अन्तिम पैरे में दिया हुआ आह्वान इस प्रकार था— हे विप्लव की अग्नि ! हे दलित और पीड़ित जनता के शक्ति-उद्गार उठ। भारत के अशक्त और ठण्डे पड़ गये खून को गर्म कर दे। भारत तेरी ओर आँखे लगाये प्रतीक्षा कर रहा है उसे उत्पीड़न के रक्त के कीचड़ से निकाल कर क्षमता और शांति की समतल भूमि पर खड़ा करके उसके सामने मनुष्यत्व के विकास का मार्ग खोल दे। क्रांतिकारी विचारकों ने पत्रिका का भव्य स्वागत किया। इससे उत्साहित होकर उन्होंने उर्दू का संस्करण बागी के नाम से प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया। जनता से इसको भरपूर समर्थन और प्रशंसा मिली। इन पत्रों में सरकार की नीति तथा अन्याय की कटु आलोचना होती थी जिसे ब्रिटिश सरकार सहन न कर सकी। अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध प्रकाशित सामग्री (लेखों) के आधार पर प्रेस और पत्रिकाओं से भारी जमानतें रू० १२००० मांग ली गई और इतनी जमानत न दे सकने के कारण १९४२ में इनका प्रकाशन बन्द करना पड़ा। विप्लव को यशपाल ने एक व्यापक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति के रूप में निकाला। अपने एक सम्पादकीय में लिखा— 'गुलामी और शोषण की जंजीरों में जकड़ी हुई जातियाँ केवल दासता की पीड़ा की चीत्कार, आहों और अपने खून को व्यर्थ बहाकर ही आजादी, आत्म-निर्णय और आत्म-सम्मान का अधिकार नहीं पा सकती उसके लिए राष्ट्र की शक्ति और जनता को क्रान्ति के उस दुर्गम समुद्र को पार करना पड़ता है जहाँ ऐतिहासिक भूलों के भंवर और स्वार्थी शोषक शक्तियों की परिवर्तन और उन्नति विरोधी लहरें पराधीन, निर्बल और असंगठित जातियों की जर्जर नौका को निगल जाने के लिए कदम-कदम पर तैयार रहती है।' हमारी आजादी की लड़ाई के अनुभव इस बात के गवाह हैं।

स्व. लालचन्द प्रार्थी लोक संगीत प्रेमी, साहित्यकार होने के साथ-साथ जन्नजात कवि भी थे और उनका कवि हृदय बचपन से ही शायरी की ओर उन्मुख था। सन् १९३१ में मैट्रिक की परीक्षा पास करने के पश्चात् वे लाहौर चले गए, वहाँ के साहित्यिक एवं स्वतन्त्रता-आन्दोलन ने उनकी काव्य कला को राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख किया। वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'कांगड़ा समाचार' और 'कांगड़ा वैली' में उनकी रचनाएँ नियमित रूप से प्रकाशित होती रही। चरित्र-निर्माण, देश-प्रेम और सेवा-भाव उनकी रचनाओं का मुख्य उद्देश्य था । इसी तरह **रूप सिंह 'फूल'** की भी स्वतन्त्रता-संग्राम और राष्ट्रीय चेतना सम्बन्धी रचनाएं उपरोक्त पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं।

बिशनदास गुलशन बिशनदास 'गुलशन' कवि एवं पत्रकार होने के साथ-साथ स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी भी थे। मैट्रिक की परीक्षा पास करने के पश्चात् वे लाहौर चले गए। उस समय लाहौर स्वतन्त्राता-

संग्राम के आन्दोलन का गढ़ था। अनेक नौजवान इसमें बढ़-चढ़कर भाग ले रहे थे। गुलशन पर भी इसका अमिट प्रभाव पड़ा। कवि हृदय तो उनके पास था ही। वहाँ से प्रकाशित होने वाली उर्दू पत्रिकाओं—'कांगड़ा-समाचार' और 'कांगड़ा शैली' में स्वतन्त्राता आन्दोलन विषयक सम्पादकीय लेख लिखे और कविताओं में स्वतन्त्रता-संग्राम सम्बन्धी अनेक घटनाओं को मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक शैली में प्रस्तुत करते हुए जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने की प्रेरणा दी। उनका अधिकांश साहित्य अप्रकाशित है। 'आजादी से पहले' कविताओं का संग्रह स्वतन्त्रता-संग्राम के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

उनकी कविताएं विविध-विषय-विभूषित हैं—भक्ति, देश-प्रेम और सामाजिक परिवेश के विभिन्न सन्दर्भों को लेकर गुलशन ने विपुल परिमाण में काव्य-रचना की जो सरसता, भावुकता और लालित्य में अद्वितीय है। स्वतन्त्रता-आन्दोलन से उस समय की बढ़ती राजनीतिक चेतना के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीयता उस युग की प्रधान भावधारा थी। अतः तत्कालीन कविता का मुख्य स्वर भी राष्ट्रीयता था। इस युग के सभी कवियों/साहित्यकारों ने देशभक्तिपूर्ण कविताओं का प्रणमन किया। उन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए क्रान्ति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी। गुलशन ने अपनी एक कविता 'आदमी नहीं' में कहा है कि 'जो गुलाम हैं उनकी कोई जिन्दगी नहीं है' ।

जो हाले कौम देख के तड़पा कभी नहीं।
सच पूछिए तो आदमी वो आदमी नहीं।।
जो हैं गुलाम उनकी कोई जिन्दगी नहीं।
उनके करीब आती कभी मौत नहीं।।

गुलशन की कविताओं में देश के प्रति गहरा प्रेम और देश कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग की उत्कट भावना दिखाई देती है । इस मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को तभी सफलता मिल सकती है जब वह जीवन के सुख-वैभव को ठुकरा कर संघर्ष और साधना के मार्ग अपनाए। गुलशन निम्नलिखित पंक्तियों में (गवारा कीजिए) देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं :

अब गुलामी से रिहा होने का चारा कीजिए,
कार फरसा जोशे गैरत को खुदारा कीजिए
राहे आजादी में हर मुश्किल गवारा कीजिए
खार की परवाह न फिकर संगे खारा कीजिए
लानते तौके गुलामी से किनारा कीजिए
आरजूए वसले आजादी अगर कुछ है तुम्हें
पहले दुनियाभर की तकलीफें गवारा कीजिए

देश के युवकों को स्वतन्त्राता की बलिवेदी पर मर मिटने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं :

तू दिल में जोशे हया है गुलाम पैदा कर
वतन की रहा में मर-मर के नाम पैदा कर
बदल दे उठके खुदारा नज़ामे दुनिया को

नया ज़माना नई सुबह व शाम पैदाकर
वो काम कर कि ज़माने में यादगार रहे
फना से दूर बकाए दवाम पैदा कर।।

गुलामी अभिशाप होती है। इसीलिए गुलशन अपनी एक रचना 'इज्ज़त नहीं है' शीर्षक कविता में अपनी हकूमत होने की सोचते हैं :-

वतन में जब अपनी हकूमत नहीं है
ज़माने में कुछ अपनी इज्जत नहीं है
गुलामी से कोई न इस्त नहीं है
गुलामी की दुनिया में किस्मत नहीं है
गुलामी से छेड़ी है हमने लड़ाई
किसी ओर से कुछ अदाकत नहीं है

कांगड़ा के लोगों से स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने के लिए कवि कह उठता है :

ऐ कांगड़ावासी! संभल,
उठ राहे आजादी पर चल।
खोल आँख हालत देख ले
दुनिया क्या से क्या हुई?
हिम्मत, इरादा, जोश की बुलबुल तर्रानुमजा हुई
साथ इसके तू भी चहचाहा
सैयाद का कुछ गम न खा।

कवि देश को स्वतन्त्रता से मुक्त करवाना चाहता है। इसीलिए देश के नौजवानों से कह उठता है :

कौम सोई है तुम्हें इसको जगाना होगा।
मुर्दा रूहों को फिर इक बार जलाना होगा।
अपने ही खून के दरिया में नहाना होगा।
देश-सेवा में यह सर तक कटाना होगा।
ऐ सपूतो! है यही फर्ज तुम्हारा सुन लो।
कैदे अगयार से माता को छुड़ाना होगा।
बांधकर सिर पर कफन चल पड़ो सोए मकतल।
तेगे जल्लाद से गर्दन को मिलाना होगा।
लाठियाँ-गोलियाँ खा जाओ तुम हँसते-हँसते।
हाथ अपना तुम्हें हरगिज़ न उठाना होगा।
खुश नहीं फूलों से होती है कभी आज़ादी।
इसके कदमों यह सर भेंट चढ़ाना होगा।

अंग्रेज बड़े कूटनीतिज्ञ थे। गुलशन उनकी चालों को भी भली-भाँति समझते थे। अपनी एक नज़्म अंग्रेज की चालों को हम में इस प्रकार अपने भावों को व्यक्त करते हैं :

अब समझने लगे हैं हुस्न की चालों को हम।
काँटों पर रखते हैं खुद पौ के छालों को हम।
सादा लोही पे हमारी है ये कहते गोरे।
नाच जो चाहे नचा लेते हैं कालों को हम।।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश से प्यार करना चाहिए, जो व्यक्ति अपने देश से प्यार नहीं करता उसकी जिन्दगानी पर लानत है :

हजार लानत वतफ़ उसकी जिन्दगानी पर।
वतन में रह के मुहब्बत जिसे वतन से नहीं।।

२६ जनवरी सन् १९२९ का दिन स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है। गुलशन ने 'ऐलाने हुरियत' से इसी दिन के महत्व पर प्रकाश डाला है :

रोज़े सयद आज का है जाने हुरियत
इस दिन किया था हिन्द ने ऐलाने हुरियत
खूने जिगर है जीनते अनबाने हुरियत
रंगी है मेरे दम से गुलिस्तां हुरियत

आजादिए वतन के लिए मारेंगे हम
अब नागवार है हमें फुकराने हुरियत
परवानों के साथ प्रण को हम निभायेंगे
भर देंगे फूल-फूल में खूने जिगर का रंग
दागे वहिश्त होगा गुलिस्तां हुरियत

स्वतन्त्रता-संग्राम में 'मौलाना अबूल कलाम आज़ाद' ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जब वे गिरफ्तार किए गए थे तो गुलशन ने उनकी गिरफ्तारी के ऊपर सुजानपुर टीहरा के एक जलसे को सम्बोधित करते हुए 'आज़ाद की' कविता पढ़कर सुनाई और वहाँ पर उपस्थित जनता के समूह ने उसे बहुत सराहा :-

इस हकूमत के तशदद की क्या कहूँ दोस्तो
सुन रहे आज हम पकड़े गए आजाद भी
क्या तमन्नाएँ यों ही पमाल होती जायेंगी

स्वतन्त्रता संग्राम में देश के सर्वमान्य नेता थे-महात्मा गांधी। स्वाधीनता-संग्राम के प्रेरक मूल्य थे— सत्य और अहिंसा। इनके साथ ही गान्धी-दर्शन में सामान्य जनता की समूह-शक्ति के उपयोग का प्रयास दिखाई देता है। युगों से शोषित भारतीय जनता को विज्ञान से प्राप्त नये साधनों से युक्त ब्रिटिश

साम्राज्यवादियों से संघर्ष के लिए प्रेरित करना कोई आसान काम नहीं था. जनमानस में जागरण और संघर्ष के भावों का संचार करने के लिए गुलशन ने कांगड़ा निवासियों को प्रमुख रूप से बताया कि प्रत्येक व्यक्ति असीम-अक्षय शक्ति का स्रोत है; आवश्यकता इस बात की है वह इसे पहचाने और आत्मविश्वास के साथ संघर्ष के लिए तैयार हो जाए। गुलशन ने देश के युवकों को स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर मिटने के लिए प्रेरित किया है—बांध कर सर पर कफन निकलो जवाना ने वतन डाल दो बुनियादे तामीरे हयाते जवादां।

स्वतन्त्रता-संग्राम में हमीरपुर जिला के ताल-महल गांव के कुन्दनलाल का अप्रतिम यशोदान रहा है। ताल-महल में उन्हें गिरफ्तार करके धर्मशाला ले जाया गया। नादोन कसबा में पहुंचने पर लोगों ने उनका भव्य स्वागत किया। पतन बाजार में पीपल वृक्ष के नीचे उनको अलविदा देने के लिए समारोह का आयोजन किया गया। विशनदास गुलशन ने वहाँ पर उनकी प्रशंसा में नज़म पढ़ी :

रश्के को कब हो गई तकदीर कुन्दन लाल की
कांगड़ा में बढ़ गई तकदीर कुन्दन लाल की
जजवाए इश्के वतन के जुर्म में पकड़े गए
वेकसूरी ही बनी तकसीर कुन्दन लाल की
सुन लो आज़ादी के मतवालो अगर होना है शाद
दिल पै अपने खींच लो तस्वीर कुन्दन लाल की

गिरफ्तारी से पहले सुजानपुर टहरा में भी भारत में अंग्रेजी राज के विरुद्ध एक जलसा हुआ इस जलसे में कुन्दन लाल ने भी अपने ओजस्वी विचार प्रकट किए और जनता को देश-हित के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दी। गुलशन ने इस जलसे को सम्बोधित करते हुए यह कविता पढ़ी :

गुलाम अब रह नहीं सकता, कभी हिन्दुस्तान अपना
खजां से छूटना ही चाहता है, गुलिस्तान अपना
कहाँ के हिन्दू न मुस्लिम गुलाम स्तान में
रहकर गुलामों कर भी होता है कोई कौमी निशां

हमें मन्जूर है मरना वतन के कौम की खातिर
हटा सकता है अब पीछे कदम क्या आसमां अपना

हिमाचल प्रदेश में साहित्यिक लेखन : नई दिशायें, समस्यायें तथा सम्भावनाएँ

डॉ० सुशील कुमार फुल्ल

आस्कर वाइल्ड के अनुसार कला निरर्थक उत्पाद है परन्तु कला के बिना जीवन निरर्थक है। अभिप्राय: यह कि कला वस्तुत: जीवन का परिष्कार है तथा सद्‌भावनाओं के उदबोधन का सक्षम माध्यम। 'हितेन सहितम्' साहित्य की परिभाषा पुरानी होते हुए भी चिरनवीन है क्योंकि साहित्यकार हलवाई नहीं है और न ही सौंदर्य-प्रसाधन बेचने वाला दुकानदार। वह रचयिता है, नव भावनाओं का उद्‌घोषक है। उसकी रचनाधर्मिता का आधार समाज है और उसकी कल्पना का सम्बल समष्टि सापेक्ष चिंतन है। साहित्यकार की लड़ाई चिरंतन है तथा विभिन्न स्तरों पर निरन्तर गतिमान रहती है। प्राथमिक स्तर पर वह अपने ही व्यक्ति के विभिन्न खण्डों से गुत्यमगुत्था होता है तथा धीरे-धीरे सामाजिक संस्कार से परिष्कृत होता हुआ विशिष्ट दृष्टिकोण को अंगीकार करता है तथा वैचारिक स्तर पर संकीर्ण से विस्तार की ओर अग्रसर होता है। रचना-प्रक्रिया की प्रगाढ़ता से पुष्ट ऐसा साहित्य ही अन्तत: कालंजयी होता है या कहें कि जन मानस में व्याप्त हो जाता है।

हिमाचल प्रदेश में साहित्यिक लेखन बारह जिलों में बंटी हुई एक भौगोलिक इकाई, पर्वतीय प्रदेश हिमाचल प्रदेश...अपनी पहचान को तलाशता हुआ हिमाचल प्रदेश। साहित्य एवं साहित्यकार की भूमिका के विषय में आंशिक रूप से मैं पहले कह चुका हूँ परन्तु यहाँ शब्द 'साहित्यिक लेखन' है। 'लेखन' व्यापक अर्थों का परिचायक है। परन्तु 'साहित्यिक' विशेषण जुड़ जाने से यह सीमा में बंध गया है। यह विवादास्पद विषय हो सकता है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि पत्रकारिता, लोक-साहित्य इसकी परिधि में नहीं आते और न ही लोक-साहित्य के विवेचन से सम्बद्ध ग्रन्थों को इसमें सम्मिलित किया जा सकता है। प्रसंगवश यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि हिमाचल प्रदेश के लोक-साहित्य पर अनेक विद्वानों ने भरपूर काम किया है, जिसका राष्ट्रीय स्तर पर स्वागत भी हुआ है।

ऐसी स्थिति में 'हिमाचल प्रदेश में साहित्यिक लेखन' के अन्तर्गत सृजनात्मक साहित्य की चर्चा ही अभीप्सित है। दूसरा प्रश्न है भाषा का। हिमाचल में मुख्यत: इन भाषाओं में साहित्य की रचना हो रही है—हिमाचली, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा अंग्रेजी। वैसे तो किसी भी भाषा में रचे जा रहे साहित्य को प्रदेश के नाम पर हिमाचली कहा जा सकता है परन्तु यहां 'हिमाचली' से अभिप्राय: हिमाचल की बोल-चाल की भाषा 'पहाड़ी' से है। मेरे विचार में 'पहाड़ी' शब्द हिमाचल की पहचान को उतनी स्पष्टता से नहीं करता जितना 'हिमाचली' शब्द। अत: हिमाचल की पहाड़ी भाषा को प्रस्तुत लेख में 'हिमाचली' से अभिहित किया गया है।

नई दिशायें, समस्यायें और सम्भावनायें हिमाचल प्रदेश के संदर्भ में उपर्युक्त शीर्षक को देखते ही

एक प्रश्न मन में उठता है—क्या साहित्यिक लेखन के क्षेत्र में हिमाचल की कोई पहचान कायम है? इस संदर्भ में हिमाचल के अमर कथा-शिल्पियों चन्द्रधर शर्मा गुलेरी तथा यशपाल का नाम तो उन्नत-मस्तक से लिया जा सकता है परन्तु इनसे कोई हिमाचल की पहचान उभर कर सामने आई हो या आती हो, यह कहना किंचित् कठिन है। क्या विवेच्य पांचों भाषाओं के संदर्भ में हिमाचली साहित्य का कहीं भी उल्लेख होता है? उत्तर स्पष्ट है—नहीं। इस मत को दो और दृष्टान्तों से स्पष्ट करना चाहूंगा। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित लोक-साहित्य, हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, खण्ड सोलह में भी जहां मण्डयाली, कांगड़ी चम्बयाली आदि साहित्य का बहुत ही संक्षिप्त परिचय दिया गया है, उससे हिमाचली साहित्य के किसी भी पक्ष की छवि उभर कर सामने नहीं आती। दोष सम्पादक का भी हो सकता है या सामग्री की अनुपलब्धि का या फिर सामग्री जुटाने वाले हिमाचली विद्वानों का भी। इसी संदर्भ में तृतीय विश्व-हिन्दी सम्मेलन, नयी दिल्ली का उल्लेख भी वांछनीय है। वहां अनेक समानान्तर सत्रों में अहिन्दी भाषी प्रान्तों तथा हिन्दी भाषी प्रान्तों के साहित्यिक योगदान पर चर्चाएं आयोजित थीं परन्तु आश्चर्य कि हिमाचली साहित्य की बात से वे सब बेखबर थे। इससे हिमाचली साहित्य के प्रति जो वर्तमान स्थिति है, उसका आभास हो जाता है।

पहचान बने कैसे? इसके कई साधन हो सकते हैं, यथा राजाश्रय, लेखन के प्रति निष्ठा तथा प्रकाशन के प्रति उत्सुकता। हिमाचल के लेखकों को राजाश्रय प्रभूत मात्रा में मिल रहा हे। हिमाचल प्रदेश कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी एवं भाषा एवं संस्कृति विभाग की भूमिका उल्लेखनीय है। गत दो वर्षों में राजाश्रय की उदारता एवं सदाशयता ने हिमाचल में साहित्यिक लेखन को पंख लगा दिये हैं और उसके सार्थक परिणाम द्रष्टव्य है लेकिन ध्यातव्य है कि राजाश्रय प्रोत्साहन का एक माध्यम है, लेखन की परिणति नहीं। सबसे महत्वपूर्ण बात लेखन के प्रति निष्ठा है और साथ ही साथ प्रकाशन के प्रति उत्सुकता भी। क्या कारण है कि सन् अठ्ठावन से कविता के क्षेत्र में अवतरित अनिल राकेशी का प्रथम काव्य-संकलन 'बोधिसत्व सुनें' सन् १९८४ में प्रकाशित होता है। इसके पीछे प्रकाशन के प्रति अनासक्ति या फि प्रकाशन की सहज सुविधाओं का अभाव हो सकता है। क्या कारण है कि हिमाचल का सक्षम कवि श्रीनिवास श्रीकान्त अपने पाठकों तक नहीं पहुंचता हिमाचल का लेखक कम लिखता है, कम छपता है, उसकी प्रकाशकों तक पहुंच नहीं, सम्पादकों से ताल-मेल नहीं, सम्मेलनों में वह चकाचौंध हो जाता है तथा मुखर नहीं हो पाता। इसका प्रमुख कारण लेखक की निष्क्रियता है, अनासक्ति है या फिर शिथिलता है। हिमाचल में प्रकाशक नहीं है, बाहर के प्रकाशक जल्दी आकर्षित नही होते। अकादमी की थोक-खरीद योजना ने कुछ प्रकाशकों को आकर्षित करना शुरु किया है, यह शुभ लक्षण है।

हिमाचल में लेखन की अपार संभावनाएं है। जो सार्थक लिखेगा, जो निरन्तर लिखेगा, वह अन्ततः सफल होगा। हिमाचली लेखक की एक अन्य समस्या उसके अपने मूल्यांकन से भी सम्बद्ध है अधिकांश लेखक अपने आप को (पहाड़ी) हिमाचली, हिन्दी दोनों का लेखक मानते हैं दोनों भाषाओं में लिखते हैं लेकिन रचनाएं वही होती हैं। ऐसी स्थिति में यदि वह एक भाषा का लेखक बनने का निर्णय कर ले तो सुविधाजनक हो सकता है। दूसरी भाषायें वह अनुवाद के माध्यम से पहुंचे तो ठीक होगा। दूसरी कठिनाई यह है कि एक ही लेखक कवि, कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार, निबन्धकार होने का दावा करता है। इससे उसका कोई विशिष्ट विधाकार का रूप उभर कर सामने नहीं आता और उसकी कोई पहचान नहीं बन पाती। यह निर्णय लेखकों को स्वयं लेना होगा कि वे किस विधा में साधिकार लिख सकते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के उपरान्त हिमाचल में रचित साहित्यिक लेखन के सम्बन्ध में भाषा-वार विवेचन अलग-थलग भाषाओं के साहित्य की नयी दिशाओं समस्याओं एवं संभावनाओं के रेखांकित करने में सहायक सिद्ध होगा। यहां यह स्पष्ट कर दूं कि यहां सभी लेखकों या विशिष्ट लेखकों का उल्लेख करना न तो अभी ष्ट है और न ही संभव। विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्तियों या धारणाओं की पुष्टि हेतु ही प्रासंगिक रूप से आवश्यक उद्धरणों का प्रयोग किया जाएगा। कुछ समस्याएं सभी प्रकार के साहित्य के लिए सामान्य रूप से मुंह बनाए खड़ी है, तो कुछ विशिष्ट भी है इसी प्रकार संभावनाएं भी अपेक्षाकृत समान अथवा भिन्न हो सकती है।

हिमाचली (पहाड़ी) में साहित्यिक लेखन हिमाचली के वर्तमान साहित्यिक लेखन पर यदि विहंगम दृष्टिपात करें तो स्थिति बहुत उत्साहजनक नहीं लगती, हां इसे संतोषजनक कहा जा सकता है परन्तु यह सुखद संयोग है कि पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम ने उस समय पहाड़ी-हिमाचली में काव्य-प्रणयन किया जब हिमाचली को कोई मान्यता प्राप्त नहीं थी। उन्होंने अपनी मातृ-भाषा को अपने विचारों का माध्यम बनाया तथा उसका उपयोग वृहतर राष्ट्रीय भावना जागृत करने के उद्देश्य से किया। निजी भाषा के प्रयोग द्वारा उन्होंने स्वतन्त्रता-संग्राम में आहुति डाली। उनकी लम्बी कविता 'नजर घुमा दी' राष्ट्रीय भावना की उद्घोषक कविता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

मैं कई बार जेल जाई आया
तां पैगाम सुनाया
जिन्दा लाल नी लानी
इक्को बार जमना आसां
बब्बे दी लाज रखनी
देस बड़ा ऐ, कौम बड़ी ऐ
कुलजा मत्था टेकी कने
इन्कलाव बोलना, ओ कांशी।
फिरी जेल जाणा।

'हिम-धारा' द्वैमासिक के जनवरी-अप्रैल १९८४ अंक में 'अग्गे-पिच्छे नजर घुम्मदी' पूरी कविता प्रकाशित हुई है, जिस में डॉ० गौतम व्यथित द्वारा दिये गये पाठ से भिन्नता है। 'हिमधारा' में उपयुक्त अनुच्छेद का पाठ इस प्रकार है :—

कांशी मती बेरी जेल होई आया
कनै पैगाम सुणाया
कांशी रामा जिंद गवाणी
जिन्दड़ीया लज्ज नी लाणी
इक वरी जम्मणा अम्मा,
बब्बे री लज्ज बचाणी।
देश बडदा कौम बड्डी

एक जिंद अमानत उसरी
कुलजां मथा टेकी कनें
इन्कलाब बुलाना
कांशी : असां जेला जाणा।

सम्भवत: पाठान्तर का कारण यह है कि बाबा कांशी राम ने कविताएं मूलत: उर्दू लिपि में लिखी थीं तथा बाद में जब वे अलग-अलग लोगों ने देवनागरी में उतारी तो उनमें पाठान्तर आ गया। इससे हिमाचली में रचित विभिन्न बोलियों के साहित्य की एक समस्या भी मुखर हो उठती है। वह है बर्तनी के स्तरीकरण की आवश्यकता।

'नाना जी दी कहानी', 'कुनाले दी कहानी' बाबा जी की महत्वपूर्ण खण्ड काव्य रचनाएं हैं, जो ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित हैं।

बाबा कांशी राम की लगभग २२ कविताएं उपलब्ध है जिनमें राष्ट्र के प्रति प्रेम, प्रकृति से स्नेह, आंचलिकता, ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण की प्रवृत्तियां मिलती हैं। 'निक्के निक्के माहूणुआं जो दुख बड़ा भारी 'कविता तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करती है।

क्रांति के अग्रदूत पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम हिमाचली के आदि कवि हैं। उनकी कविताओं का विशिष्ट स्वर मानवतावादी है। जन-चेतना को जागृत कर एक निश्चित उद्देश्य की ओर प्रेरित करने में बाबा कांशी राम को सफलता मिली है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी उनका काव्य शब्द चयन एवं भावनाओं के उद्दाम प्रवाह की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आश्चर्य है कि पहाड़ी गांधी का नाम डिक्शनरी आव नेशनल वायोग्राफीज में अंकित नहीं है। उक्त पुस्तक में पंजाब के एक गांव मड़ौली (जिला रोपड़) में जन्मे एक अन्य क्रान्तिकारी पं० कांशी राम का उल्लेखर है, जो पहाड़ी गांधी कांशी राम के समकालीन थे। इतना ही नहीं भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहासों में भी पहाड़ी गांधी का नाम नहीं मिलता हिमाचल के जो इतिहासवृत्त प्रकाशित हुए हैं, उनमें भी पहाड़ी गांधी का उल्लेख न के बराबर है। इतना अवश्य है कि मियां गोवर्धन सिंह के अंग्रेजी में प्रकाशित इतिहास के पृष्ठ १९७ पर पहाड़ी गांधी कानामोल्लेख है।

बाबा आत्मा-प्रचार के प्रति अनासक्त थे। दूसरे उनकी कविताओं का संकलन एवं जीवन-वृत्त उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हुआ है। काव्य-संकलन तो अद्यावधि अप्रकाशित है। पहाड़ी गांधी के साहित्यिक योगदान को प्रकाश में लाने प्रचारित-प्रसारित करने में हिमाचल के लेखक एवं संसद सदस्य प्रो० नारयणचन्द पराशर तथा उनके सहयोगियों का नाम उल्लेखनीय है।

पहाड़ी गांधी का कार्यकाल (१८८२-१९४३) था । हिमाचली में संभवत: अन्य लेखक भी रहे होंगे, जिन्होंने परान्तः सुखाय या स्वान्तः सुखाय अपनी मातृभाषा में सृजन किया होगा। सन् १९४४ से सन् १९६६ तक की अवधि में कोई हिमाचली में पुस्तकाकार रचना छपी हो, यह अज्ञात है। सन् १९६६ से अद्यावधि अनेक रचनाएं हिमाचली में प्रकाशित हुई हैं। डॉ० कृष्णगोपाल पीयूष गुलेरी का काव्य संग्रह 'मेरा देश म्हाचल' हिमाचली में अग्रणी संकलन है। डॉ० गौतम व्यथित का काव्य संकलन, 'चेतें' भी कालक्रम की प्रारम्भिकता के कारण उल्लेखनीय है। 'संढियां रे मोड़' मनसा राम शर्मा अरुण द्वारा रचित हिमाचली का

प्रथम मौलिक लघु वीरकाव्य है। सन् ७० से सन् ८० तक का समय हिमाचली साहित्यिक लेखन का वह काल है, जिसमें अनेक रचनाएं प्रकाश में आईं। इनमें से अधिकांश कृतियां लेखकों द्वारा स्वयं प्रकाशित है। वैसे भाषा एवं संस्कृति विभाग तथा अकादमी ने हिमाचली लेखन को काव्य-धारा भाग १,२,३ में हिमाचल के अनेक लेखकों को एक साथ प्रकाशित कर प्रशंसनीय मंच प्रदान किया है। काव्य धारा में संकलित नये-पुराने सभी रचनाकार हिमाचली की वृद्धि में सहयोगी रहे हैं। इसके अतिरिक्त कविता-कानन में अनेक प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने का श्रेय स्वर्गीय चांद कुल्लवी को है, जो स्वयं हिमाचली तथा उर्दू के सक्षम हस्ताक्षर थे।

हिमाचली गद्य को नयी दिशा देने में कुलभूषण चन्द्र कायस्थ का योगदान महत्वपूर्ण है। 'रींगदी पीड़' कुलभूषण की हिमाचली में रचित कहानियों का संग्रह है। गद्य की दूसरी पुस्तक देवराज शर्मा की लाल चादरू री किंगरी' है। संयोगवंश गद्य की पहली दोनों पुस्तकें कहानी-संग्रह है। कविता की अपेक्षा गद्य रचनाएं कम प्रकाशित हुई हैं। निबन्ध के क्षेत्र में तथा नाटक एवं एकांकी के क्षेत्र में हिमाचली रचनाएं न्यूनमात्रा में ही उपलब्ध है। नाटक, एकांकी के क्षेत्र में नरेन्द्र अरुण, शिव उपाध्याय आदि के नाम अग्रणी हैं। व्यंग्य निबन्धों के लिए डॉ० आत्माराम का नाम लिया जा सकता है। भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा हिमाचली के सोलह एकांकीकारों के एकांकियों का संग्रह 'सोलह सिंगी' सार्थक प्रयास है। इसी क्रम में 'लोसरा रे फूल' शीर्षक कहानी-संग्रह हिमाचली में लिखने वाले कहानीकारों को एक साथ प्रस्तुत करता है। हिमाचल कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित 'पहाड़ी रचना सार' में नौ निबन्ध, सात कहानियां, छः एकांकी, दो यात्रा संस्मरण तथा ग्यारह कवियों की कविताएं संकलित की गई हैं। हिमाचली में रचित विभिन्न विधाओं के साहित्य की यह प्रतिनिध पुस्तक है तथा हिमाचली के सभी मूर्धन्य लेखकों से एक साथ साक्षात्कार किया जा सकता है।

अनुवाद : एक नयी दिशा हिमाचली को समृद्ध करने के लिए अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। यह कार्य दो प्रकार से हो सकता है— हिमाचली में रचित कृतियों का दूसरी भाषाओं में अनुवाद तथा दूसरी भाषाओं के साहित्य का हिमाचली में अनुवाद। 'काव्यधारा' में संकलित हिमाचली की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। लेकिन हिमाचली की रचनाओं का राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में अनुवाद प्रायः न के बराबर छपा है। दुनीचन्द चम्बयाल ने कुछ हिमाचली कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद अवश्य किया है।

दूसरी भाषाओं से हिमाचली में अनुवाद की परम्परा का सूत्रपात भी हुआ है। 'छनाट' में महाकवि भास के नाटकों का हिमाचली में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। अनुवादक हैं— दुर्गादत्त शास्त्री विद्यालंकार। गोकुलचन्द शर्मा आचार्य, गुनसाराम शर्मा अरुण, केशव राम आचार्य, चन्द्रशेखर बेबस, प्रो० नारायणचन्द पराशर ने सरस हिमाचली में महात्मा बुद्ध की वाणी 'धम्मपद' का अनुवाद किया है। इसमें मूल पालि पाठ के साथ हिमाचली रूपान्तर प्रस्तुत किया गया है। मूल पाठ साथ-साथ होने से पाठक को पालि एवं हिमाचली के किंचित् शब्दों में सहज ही आभास होता है। डॉ० पीयूष गुलेरी ने गोर्की के उपन्यास 'मां' का अनुवाद हिमाचली में किया है। ऐसे और अनुवादों की आवश्यकता है। साथ ही हिमाचली में रचित श्रेष्ठ रचनाओं की आवश्यकता है। हिमाचली में रचित श्रेष्ठ रचनाओं के हिन्दी, अंग्रेजी में अनुवाद भी होने चाहिएं।

मूल-समस्या हिमाचली में साहित्यिक लेखन की मूल समस्या पाठक-वर्ग का अभाव है। हिमाचली पुस्तकों की खपत केवल हिमाचली में होती है, बाहर नहीं। विस्तृत पाठक वर्ग के अभाव में रचनाओं का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता और न ही लेखक को आत्मतोष। यही कारण है कि गत कुछेक वर्षों में हिमाचली में रचित पुस्तक प्रकाशन की मात्रा में कमी आयी है। वैसे 'दक्खनी हवा' काव्य-संग्रह के लेखक बलदेव सिंह ठाकुर मानते हैं कि 'हिमाचली में लेखन का अपना आनन्द है तथा एक न एक दिन यह साहित्य खूब पनपेगा।'

हिमाचली के विभिन्न रूपों का उपयोग एक अन्य समस्या है। साहित्यिक लेखन में प्रयोगार्थ स्तरीकृत हिमाचली का रूप आना चाहिए। साहित्य में परिष्कार के लिए भाषा का एक रूप होना भी आवश्यक है।

अस्तु, हिमाचली में रचित रचनाएं सृजनात्मकता की दृष्टि से कलात्मक है। उनके विकास, प्रचार, प्रसार की अनेक संभावनाएं हैं लेकिन संभावनाओं को सार्थक रूप देने के लिए हमें भाषा का स्तरीकृत रूप व्यवहार में लाना होगा, अधिकाधिक भाषाओं में इसेक अनुवाद करने करवाने होंगे—तथा अपनी रचनाओं की श्रेष्ठता के बल पर पाठक-वर्ग को आकर्षित करना होगा।

हिन्दी में साहित्यिक लेखन हिमाचली में रचित साहित्य की अपेक्षा हिमाचल का हिन्दी लेखन अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है। कविता, उपन्यास, कहानी के क्षेत्र में तो हिमाचलीय लेखन राष्ट्रीय धारा से जुड़ता जान पड़ता है। नाटक, निबन्ध, एकांकी के क्षेत्र में हिन्दी लेखन कुछ कम जान पड़ता है। समीक्षा में भी हिमाचल का अपना अस्तित्व है।

हिमाचली लेखन में पाठक-वर्ग की समस्या है परन्तु हिन्दी में ऐसी बात नहीं है। हां, इतना अवश्य है कि हिमाचल के हिन्दी लेखक को दूसरे प्रदेशों के लेखकों की रचना-क्षमता के समक्ष अपनी विशिष्टता सिद्ध करनी होती है और उसी के आधार पर वह राष्ट्रीय धारा से जुड़ता है।

हिमाचल में हिन्दी कविता प्रणयन की परम्परा पर्याप्त समृद्ध रही है। गुलेर जनपद एवं बिलासपुर में ब्रजभाषा काव्य उपलब्ध होता है। गुलेर राजदरबार के कवि उत्तम को हिमाचल का आदि कवि माना जा सकता है। 'दिलीप रंजनी' चरित काव्यों की परिपाठी में लिखा गया ऐतिहासिक घटना-प्रधान महाकाव्य है। कवि उत्तम का समय सत्रहवी शताब्दी है। ब्रजभाषा काव्य की परम्परा अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में भी जारी रही। कांशी राम, रुद्रदत्त, सुखदेव सामुद्रिक, बृजराज आदि ब्रज भाषा के अन्य महत्वपूर्ण कवि हैं। ब्रजभाषा पर प्रथम शोध का श्रेय डॉ० श्रीकान्त प्रत्यूष गुलेरी को है। ब्रजभाषा काव्य पर डॉ० मनोहर लाल भी कार्यरत है। संभव है किन्हीं अन्य स्थानों पर भी ब्रजभाषा काव्य रचा गया हो।

ब्रजभाषा काव्य प्राचीन परिपाटी का काव्य है। अमरकथा शिल्पी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अभ्युदय के साथ हिमाचल की हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना का उद्घोष होता है। बाबा कांशी राम की रचनाओं में जो जन-जागरण का उद्बोधन है, वैसी ही भावना गुलेरी के काव्य में मिलती है। भारत की जय उनकी महत्वपूर्ण कविता है। गुलेरी का स्वर नैतिकता का है।

स्वतंत्रता-पश्चात् के कवियों में चातक वर्मा का नाम आरम्भिक रचनाकारों में लिया जा सकता है। अपने काव्य संग्रह 'कूक' में इन्होंने तीन सौ दोहे प्रस्तुत किये हैं। इनके दोहों पर सूफी मतवाद का प्रभाव

स्पष्ट लक्षित होता है।

हिमाचल की हिन्दी कविता को राष्ट्रीय धारा से जोड़ने वाला महत्वपूर्ण हस्ताक्षर श्रीनिवास श्रीकान्त है, जिसने हिमाचल की तुकान्त हिन्दी कविता को एक नये रास्ते पर लाकर खड़ कर दिया। 'जरायु, इतिहास और नियति' इनका काव्य-संकलन है। श्रीनिवास की कविता में घटाटोप बिम्ब मिलते हैं। बिम्बों का कलात्मक संसार कवि की उपलब्धि है। नये कवियों में महाराजकृष्ण काव का दर्शनिक अंदाज आकर्षित करता है परन्तु वहां प्रतीक एवं बिम्ब कविता के भाव को बोफिल नहीं बनाते। कुमार कृष्ण, सतीश धर, रमेश पठानिया, साविर, अवतार सिंह ऐनगिल आदि कवि हिमाचल की हिन्दी कविता को एक नया आयाम देते हैं।

समीक्षा के क्षेत्र में बहुत काम तो नहीं हुआ है परन्तु फिर भी 'श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी व्यक्तित्व एवं कृतित्व' (डॉ० पीयूष गुलेरी), गुलेरी साहित्यालोक (सं० डॉ० मनोहरलाल), कामायनी का आनन्दवाद (डॉ० नीलमणि उपाध्याय), गुलेरी को अगर कहानियां (सं० डॉ० विद्याधर गुलेरी) आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

नाटक, एकांकी, निबन्ध बहुत कम लिखे गये हैं। जो लिखे भी गये हैं, उनमें शैली या कथ्य की नवीनता नगण्य है। इस दिशा में बहुत सम्भावनाएं रामकृष्ण कौशल, नरेन्द्र अरुण, ले. कर्नल विष्णु शर्मा, काहन सिंह जमाल, शान्तलवी, शिव उपाध्याय के नाम उल्लेखनीय है। ललित निबन्धों में डॉ० मनोहर लाल का नाम लिया जा सकता है।

हिमाचल का हिन्दी लेखन पर्याप्त सम्पन्न है तथा हिमाचल के लेखक हिन्दी साहित्य के भण्डार में निरन्तर वृद्धि कर रहे हैं। गत छः वर्षों में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं परन्तु आश्चर्य है कि सुन्दर लोहिया, जिया सिद्दीकी जैसे सक्षम कवि-कहानीकारों ने अपनी रचनाओं को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित नहीं करवाया। युवा लेखक प्रकाशन के प्रति उत्सुक एवं जागरुक हैं, यह संतोष की बात है।

हिन्दी के साहित्यिक लेखन में समस्याएं कम हैं, सम्भावनाएं अधिक हैं। धीरे-धीरे हिमाचल के हिन्दी लेखक राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना रहे हैं, इससे सहज ही उनकी रचना-क्षमता का अनुमान हो जाता है।

संस्कृत, उर्दू तथा अंग्रेजी में साहित्यिक लेखन इन तीनों भाषाओं में साहित्य सृजन करने वाले हिमाचली लेखकों की संख्या बहुत कम है। तीनों की समस्या लगभग एक सी है। संस्कृत और उर्दू के पाठक बहुत कम हैं। संस्कृत विद्वानों की भाषा है, आम जनता की नहीं। अतः रचना किसके लिए की जाए उर्दू जानने वाले भी कम है, तो उर्दू का साहित्य पढ़ेगा कौन? पाठक वर्ग ही नहीं, तो स्वाभाविक ही है कि साहित्य का विक्रय नहीं होगा। ऐसी स्थिति में लेखक का उत्साह एवं सृजन-प्रक्रिया मन्द पड़ जाती है।

हिमाचल में संस्कृत के प्रमुख कवि एवं लेखक इस प्रकार हैं :— केशव शर्मा, श्री दुर्गादत्त शास्त्री, आचार्य रमानन्द, परमानन्द शास्त्री, दामोदरदत्त शास्त्री, सन्तराम शास्त्री, भवानीदत्त शास्त्री, हरिबल्लभ शर्मा आचार्य, खुशीराम शर्मा आदि। अधिकांश लेखक कवि सम्मेलनों में पठनार्थ कविताएं लिखते हैं। किन्हीं विद्वानों ने महाकाव्य लिखने का भी प्रयत्न किया है, यथा, परमानन्द शास्त्री का 'इन्दु काव्य।'

संस्कृत लेखकों की समस्याएं अलग प्रकार की है। पाठक वर्ग नहीं; प्रकाशन सुविधाए नहीं, संस्कृत में लोक-प्रिय पत्र-पत्रिकाएं नहीं। अतः संस्कृत में लेखन वस्तुतः रचना को अपने आप तक सीमित रखना है या फिर मांत्र विद्वानों तक पहुंचाना है।

हिमाचल में उर्दू लेखन की स्थिति संस्कृत से किंचित भिन्न है लेकिन पाठक वर्ग हिन्दी पाठकों जितना विशाल नहीं है। उर्दू गजल, नजम का अधिक सृजन हुआ है तथा नसर में अपेक्षाकृत कम रचनाएं मिलती हैं। लालचन्द प्रार्थी (चांद कुल्लवी) रूप सिंह फूल काहन सिंह जमाल, रत्न सिंह हिमेश, खेमराज गुप्त सागर, धर्मपाल आकिल, राजेशकुमार औज, शबाब ललित, कृष्ण कुमार तूर, आदिल सिरमौर, मनोहर सागर पालमपुरी, सुदर्शन कौशल नूरपुरी, बिहारी लाल बहार, परवाज नूरपुरी, कृष्ण नुरपुरी, ज़िया सिद्दीकी आदि के नाम प्रमुख हैं। वैसे हिमाचल के उर्दू लेखक राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में बराबर छपते हैं तथा अखिल भारतीय मुशायरों में आमुंत्रित किये जाते हैं। कुछ एक लेखकों के काव्य-संकलन प्रकाशित हुए जिनका भरपूर स्वागत हुआ है।

अंग्रेजी में लिखने वाले लेखक हिमाचल में कम हैं और साहित्यिक सृजन में तो और भी कम।कवियों में सोम प्रकाश रंचन, महाराज कृष्ण काव, दुनीचन्द चम्बयाल, परमानन्द शर्मा, सन्तराम शर्मा, विनोद हिमाचली, हेरियट प्रियट का नाम लिया जा सकता है।

उपन्यास-कथा के क्षेत्र में सन्तराम शर्मा, सुशील कुमार कुल्ल का योगदान उल्लेखनीय है। समीक्षा के क्षेत्र में डॉ० आत्मा राम, डॉ० सोम पी, रंचन, डॉ० हरिराम जस्टा, डॉ० श्रीमती हैरियट प्रियट तथा अन्य अनेक शोध-छात्रों का नाम लिया जा सकता है। अंग्रेजी लेखकों की समस्या लेखन नहीं है बल्कि प्रकाशित पुस्तकों का प्रसार-प्रचार है। दूसरे हिन्दी, हिमाचली, उर्दू, संस्कृत आदि के लेखकों के वर्ष भर में कई सरकारी सम्मेलन होते हैं, वैसे कभी अंग्रेजी लेखकों का सम्मेलन अथवा गोष्ठी नहीं हुई।

निष्कर्ष हिमाचल प्रदेश में विभिन्न भाषाओं में हो रहे साहित्यिक लेखन के विहंगम सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि हिन्दी साहित्य राष्ट्रीय धारा से जुड़ा हुआ है और हिमाचल ने कहानी, कविता, उपन्यास के क्षेत्र में नये आन्दोलनों, नयी भाव-भूमियों को अपनी पूरी आंचलिकता के साथ प्रस्तुत किया है। हिमाचली में रचित साहित्य व्यक्ति एवं सरकारी स्तर पर पर्याप्त पुष्ट हुआ है तथा अनुवाद के माध्यम से हिमाचल से बाहर भी पहुंचा है। हिमाचली साहित्य के काव्य एवं गद्य महत्वपूर्ण है। मंच पर प्राकृतिक प्रवाह एवं प्रभाव उत्पन्न करने में हिमाचली नाटक एवं एकांकी रोचक तथा सार्थक भूमिका अदा करने में सफल हुए है। उर्दू में कविता स्थायी महत्व की अधिकारिणी है। संस्कृत में विद्वानों ने जो प्रयत्न किये हैं, वे सराहनीय हैं परन्तु मात्रा की दृष्टि से साहित्य बहुत कम रचा गया है। उर्दू का साहित्य भी मात्रा की दृष्टि से प्रकाशित कम हुआ है यद्यपि लिखा खूब गया है। हिन्दी में अनेक पुस्तकें गत चार-पांच वर्षों में प्रकाशित हुई हैं। हिमाचली में प्रकाशन की गति कुछ धीमी हुई है, यह चिंतनीय है। अंग्रेजी में भी थोड़ा-बहुत साहित्य रचा गया है। अतः हिमाचल के साहित्यिक लेखन का निरन्तर विकास-परिष्कार एवं संवर्धन हो रहा है।

हिमाचल प्रदेश में साहित्यिक लेखन की अपार संभावनाएं है। अनेक अछूते विषय एवं जन-जीवन की विलक्षणताएं सहज ही किसी व्यक्ति को लेखकीय प्रेरणा प्रदान कर सकती है। विभिन्न भाषाओं के लेखकों ने

अपनी रचनाओं में जो हिमाचली मिट्ठी का स्पर्श प्रस्तुत किया है, वह सराहनीय है। हिमाचल का रचनाकार सृजनात्मक-शिखरों को छूने के लिए निरन्तर गतिशील, निरन्तर उत्सुक है। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत शीघ्र हिमाचल का लेखक राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाएगा तथा प्रदेश की विशिष्टताओं को साहित्य में चित्रांकित करेगा।

तमिलनाडु ललित कला अकादमी द्वारा शिमला में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम के अवसर पर मयूर नृत्य का उत्कृष्ट प्रदर्शन

सिद्ध-नाथ संप्रदाय में सिद्ध बाबा सिब्बो का स्थान

संसार चन्द प्रभाकर

द्वापर युग में श्रृंगी ऋषि के शाप से जब तक्षत जाति के नाग ने महाराजा परीक्षत को काट कर उन की जीवन लीला का अन्त कर दिया तो महाराजा परीक्षत के पुत्र जन्मेजय हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठे। राजगद्दी पर बैठते ही महाराज जन्मेजय ने सांप का समूल नाश करने की ठान ली। उन्होंने भारत भू-भाग के समस्त ऋषियों-योगियों एवं मन्त्र विद्या में निपुर मुनियों को बुलाकर नाग जाति को मन्त्रों द्वारा हवन कुण्ड में भस्म करने की अपनी मनोकामना उनके आगे व्यक्त की। बस फिर क्या था महाराजा जन्मेजय की मनोकामना की पूर्ति हेतु चार वर्ग योजन का एक बड़ा हवन कुण्ड बनवाया गया। ग्यारह सहस्र ऋषि उस हवन कुण्ड के चारों ओर मन्त्रों का उच्चारण करने लगे। तक्षत नाग महाराजा जन्मेजय के इस प्रकोप से भयभीत होकर राजा इन्द्र के पास गया। राजा इन्द्र ने उसे अभय दान देकर लक्ष्मी के द्वारा उसे अमृत पान करवाकर अमर कर दिया। जन्मेजय राजा का प्रकोप तक्षत के मन को फिर भी सताता रहा। तक्षत भय से कांपता हुआ राजा इन्द्र के सिंहासन से जा लिपटा परन्तु हवन कुण्ड पर बैठे ऋषियों के मन्त्रोच्चारण से इन्द्र सिंहासन के साथ तक्षत आकाश में उड़ता हुआ हवन कुण्ड की ओर बढ़ने लग। यह देख कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों ही शक्तियां विचलित हुई। भगवान शिव के कहने पर महाराज परीक्षत की आत्मा ने हवन कुण्ड पर आकार राजा जन्मेजय के प्रकोप को उपदेश देकर शान्त कर दिया और इस प्रकार नाग जाति का समूल नाश होने से बच गया।

द्वापर युग के अन्त हो जाने पर यही नाग जाति कलियुग में बढ़ती चली गई और धरती के समस्त प्राणी घबरा उठे। चारों ओर शिव शक्ति की पूजा होने लगी इससे शैव सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई। शैव सम्प्रदाय के साथ-साथ सिद्धानाथ सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। इस सिद्धनाथ सम्प्रदाय के सभी पुरुष चत्कारी थे। नाथ सम्प्रदाय में यदि गुरु गोरख नाथ का नाम सर्वोपरी है तो गूगा जहर पीर (वीर) का नाम सिद्ध सम्प्रदाय में एक अलौकिक एवं चत्कार युक्त पुरुष होने के नाते सारे भारत में विख्यात है। यदि राजा भर्तृहरि, राजा गोपी चन्द, राजा रसालू गुरू गोरख नाथ के शिष्य माने जाते हैं तो सिद्ध बाबा सिब्बो गूगा जहर पीर (वीर) के अनन्य भक्त कह कर याद किए जाते हैं और जहां गूंगा जहर पीर (वीर) की तपो भूमि पर जाने से प्रत्येक प्रकार के विष का असर जाता रहा है। वहां बाबा सिब्बो की आराधना स्थली की मिट्टी और पानी में प्रत्येक प्रकार के विष के असर को दूर करने का चमत्कार है। तभी तो इस अध्यात्मिक सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता कि जिस स्थान पर किसी सिद्ध पुरुष ने तपस्या की हो उसकी मिट्टी में एक युग तक तप का स्पन्दन रहता है। अर्थात् सिद्ध पुरुष की तपोभूमि चमत्कार युक्त हो जाती है। इन्हीं चमत्कारों से प्रभावित हो कर मानव ने भारत में देवस्थलों का निर्माण किया और ये देवस्थल हिमाचल प्रदो में बहुतायत से देखने को मिलते हैं जिनमें समस्त भारत की संस्कृति निहित है।

बाबा सिब्बो की आराधना स्थली हिमाचल प्रदेश के जिला काँगड़ा की तहसील नूरपुर में सिब्बो थान

(सिब्बो स्थान) के नाम से समस्त उत्तरी भारत में एक विख्यात स्थली है। यह स्थान पठानकोट से जोगिन्द्र नगर को रेल पर जाते हुए भरमाड़ स्टेशन से लगभग एक किलो मीटर की दूरी पर स्थित अभी तक भी बाबा सिब्बो के चमत्कारों से युक्त सिद्ध-नाथ सम्प्रदाय की छाप अपने में समेटे युग की अलौकिकता का प्रमाण और अध्यात्मिक शक्ति का जीता जागता उदाहरण है। श्रावण और भादों के महीनों में प्रतिवर्ष रविवार के दिन हजारों की संख्या में समस्त उत्तरी भारत के यात्री इस स्थान पर सिद्ध बाबा सिब्बो का आशीर्वाद ग्रहण करने आते हैं। इन दो महीनों में प्रति वर्ष रविवार के दिन बड़ा मेला लगता है।

आज से लगभग ग्यारह सौ वर्ष पूर्व सिद्ध बाबा सिब्बो का जन्म सिद्धपुर घाड़ (सिद्ध पुरुष का घर) नामक गांव में नाई जाति में हुआ। इनके पिता का नाम आलम और माता का नाम सुधावती था। आलम और सुधावती भगवान शिव के अनन्य भक्त थे। जब सुधावती और आलम के विवाह को बारह वर्ष बीत गए और उनके घर कोई सन्तान न हुई तो उन्होंने बिना अन्न जल किए भगवान शिव की भक्ति करना आरम्भ कर दी। कहते हैं कि ऐसा करने से एक दिन उन्हों भगवान शिव के साक्षात दर्शन हुए और भगवान शिव ने उन्हें पुत्र प्राप्ति का वर दे दिया परन्तु यह भी कहा कि आप का पुत्र जन्म से लंगड़ा और बहरा होगा। इस पर सुधावती ने बिलख कर भगवान शिव के आगे विनती की, 'महाराज ! लंगड़ा और बहरा पुत्र पा कर हम क्या करेंगे ? हमें कोई और वर दो' सुधावती की इस विनय पर भगवान शिव उन्हें एक कन्या प्राप्ति का दूसरा वर दे दिया। भगवान शिव की इस बात को सुनकर आलम गिड़गड़ा कर बोला, 'महाराज ! कन्या तो पराया धन है, आप हमें दो और पुत्रों का वर दो जिस से एक पुत्र मेरी और एक सुधावती की बुढ़ापे में सेवा कर सके' आलम की इस बात पर भगवान शिव ने उन्हें दो और पुत्रों का वर दे दिया और यह तीसरा वरदान देकर भगवान शिव लुप्त हो गए।

घटना के एक वर्ष उपरान्त सुधावती को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो जन्म से लंगड़ा और बहरा था। आलम ने उस का नाम सिब्बो रख दिया। इस के दो वर्ष उपरान्त सुधावती ने एक लड़की को जन्म दिया। उस ने उस का नाम शिवा रख दिया। शिवजी के तीसरे वरदान से कालान्तर सुधावती के दो पुत्र और पैदा हए आलम ने उनका नाम भूरू और मेघा रख दिया। ये चारों भाई बहन सुधावती के घर में पलने और बढ़ने लगे। आलम और सुधावती सिब्बो के सिवा अपनी शेष तीनों सन्तानों से बड़ा स्नेह करते और सिब्बो को अपनी गृहस्थी पर बोझ समझ कर उससे घृणा करते। सिब्बो जब सात वर्ष का हुआ तो उसे बचपन से ही बहरा लंगड़ा और गूंगा दोकर आलम ने उसे जंगल में पशु चराने का काम सौंप दिया। सिब्बो जब संध्या के समय पशु चराकर घर वापस लौटता तो उस के माँ-बाप उसे रूखा सूखा भोजन खाने को देते। यह देख कर सिब्बो की बहन शिवा मन ही मन कुढ़ती और चोरी छुपे उसे भोजन करवाती।

कहते हैं एक बार सिब्बो की माता सुधावती अपने मायके चली गई और दूसरे दिन शिवा ने सिब्बो को दोपहर को ही भोजन करने हेतु घर पर बुला लिया क्योंकि आलम, मेघा और भूरू सुबह से खेतों में काम करने चले गए थे। दोपहर को जब सिब्बो घर आया तो शिवा ने भावुकता में बह सारा ही भोजन जो उसने सारे परिवार के लिए बनाया था सिब्बो को ही खिला दिया। सिब्बो कई दिनों से भूखा था और वह सारा भोजन खा गया। उधर आलम मेघा और भूरू के घर आने का समय हो रहा था। शिवा आलम के आने के भय से उदास हो उठी। अपनी बहन को इस कदर उदास देखकर सिब्बो ने अपने हाथ धोए और अपने सिर पर बंधा हुआ खद्दर का कपड़ा उतारा तथा उस पर कपड़े से दाल और चावल के पतीलों को एक स्थान पर रख का ढांप दिया। कुछ

देर वह मौन वहां हाथ बांधे खड़ा रहा। शिवा उसे की ओर देखती रही और कुछ ही देर में सिब्बो ने जब वह कपड़ा भोजन के खाली बर्तनों पर से हटाया तो वे बर्तन ज्यों के त्यों भोजन से भरे हुए थे। शिवा, सिब्बो की इस करामात को देखकर बोली, 'भैय्या ! यह क्या किया आप ने ?' सिब्बो गूंगा होने के कारण कुछ न बोल पाया और हाथ के संकेत से शिवा को भी बात किसी को न बतलाने और चुप रहने का संकेत कर के वापस जंगल को लौट गया तथा वहां जा कर वह गूंगा जहर पीर (वीर) की आराधना में लीन हो गया। पशु जंगल में चरने लगे। उधर कुछ देर के उपरान्त आलम मेघा और भूरू घर आए। शिवा ने उन्हें भोजन करवाया परन्तु शिब्बो की बात उन्हें न बतलाई।

उन दिनों गन्दम की फसल की कटाई का समय था। दूसरे दिन जब सिब्बो पशु लेकर जंगल को जाने लगा तो आलम ने उसे संकेत से कहा, 'सिब्बो, आज शाम को आतीवार गेहूं की फसल के गट्ठों को बांधने के लिए जंगल से लसोड़ बेल (फसल के गट्ठे बांधने हेतु उपयोग में लाई जाने वाली बेल) का एक गट्ठा लेते आना ताकि हम फसल को इकट्ठा करके बांध सकें' सिब्बो ने आलम की बात सुनकर सिर से हां की और जंगल की ओर चल दिया। शाम को सिब्बो लसोड़ बेल का गट्ठा सिर पर उठाए घर की ओर बढ़ा। आलम, भूरू और मेघा उसके घर लौटने से पूर्व ही घर पहुंच चुके थे। सिब्बो को घर की ओर बढ़ता देख आलम चीख उठा, 'अरे! ये सांप गट्ठे में बांध कर ले आए हो, हमें मरवा दोगे इनसे' और ज्यों ही सिब्बो ने लसोड़ बेल का गट्ठा आंगन में रखा तो भूरू और मेघा भी चिल्ला पड़े, 'इतने भयानक सांप जिह्वाओं को लप-लपाते हमारी ओर देख रहे हैं, पिता जी, हमें बचा लो। सिब्बो हमें मरवाना चाहता है' भूरू और मेघा की यह बात सुन कर आलम ने सिब्बो को तुरन्त उस गट्ठे को जंगल में छोड़ने की आज्ञा दे दी और दोबारा घर लौटने की मनाही कर दी। सिब्बो गट्ठे को उठा कर जंगल की ओर लौट गया। शिवा की अपने बाप से सिब्बो के बारे बात करने की हिम्मत न पड़ी।

कुछ दिन के उपरान्त जब सुधावती घर लौटी तो सिब्बो को घर में न देख कर वह व्याकुल हो उठी परन्तु जब सांपों वाली बात सुनी तो वह चुप हो गई। जब शिवा ने सुधावती को सिब्बो द्वारा पुनः भोजन तैय्यार करवा देने की करामात बतलाई तो वह दंग रह गई। उसने सिब्बो को बहुतेरा ढूंढा परन्तु घने जंगल में उसका कहीं पता न चल पाया। दिन बीतते गए शिवा युवा हो गई तो उस की सगाई समीप के एक गांव में कर दी गई परन्तु देव कोप से शिवा का वर सगाई के कुछ दिन उपरान्त स्वर्ग सिधार गया और शिवा उस के गांव में जा कर अपने होने वाले पति के मृतक शरीर के साथ चिता पर बैठ कर सती हो गई। अब सुधावती के पास उस की दो ही सन्तानें मेघा और भूरू रह गए। सिब्बो उस दिन के उपरान्त घर वापस न लौटा।

सिब्बो अपने घर से लगभग पांच किलो मीटर की दूरी पर एक घने जंगल में गूगा जहर पीर (वीर) की तपस्या में लीन हो गया। वह कंद-मूल खा कर अपना निर्वाह करता। कहते हैं कि जब सिब्बो की तपस्या बारह वर्ष की पूर्ण हुई तो उन्हें गूगा जहर पीर (वीर) के दर्शन हुए। बारह वर्ष के उपरान्त जब सिब्बो एक दिन एक टांग के सहारे ऊपर को मुख किए गूगा के ध्यान में आकाश की ओर देख रहा था तो उसे गूगा जहर पीर की सवारी नीले रथ पर आकाश मार्ग के रास्ते जाती दिखाई दी। कुछ ही देर उपरान्त गूगा जहर पीर (वीर) बाबा कैलू और गूगा जहर पीर (वीर) का सेनापति अजय पाल, कैलां बच्छी और बहन गुगड़ी रथ से उतर कर भूमि पर आ गए तथा उन सब ने बाबा सिब्बो को साक्षात दर्शन दिए।

गूगा जहर पीर (वीर) के वरदान से बाबा सिब्बो स्वस्थ हो गए और वह एक सिद्ध पुरुष कहलाए। गूगा

जहर पीर के दर्शन कर के सिब्बो अपने आप को धन्य समझने लगा। कहते हैं कि गूगा पीर ने सिब्बो को चमत्कार युक्त किया और कहा, 'सिब्बो तू ने मेरी भक्ति की है अतः यह स्थान, जिस स्थान पर तू ने बारह वर्ष तप किया है इस स्थान की मिट्टी और पानी दोनों में जब तक यह ब्रह्माण्ड है चमत्कार रहेगा' गूगा जहर पीर (वीर) की यह बात सुन कर सिब्बो बोला, 'महाराज मिट्टी और पानी में क्या चमत्कार होगा ?' इस पर गूगा जहर पीर (वीर) बोले, 'सिब्बो, जिस स्थान पर तू ने मेरी भक्ति की है उस स्थान पर आने से सभी प्रकार के विष का असर जाता रहेगा और इस स्थान की मिट्टी तथा पानी में एक युग तक विष को दूर करने का चमत्कार रहेगा' गूगा जहर पीर (वीर) की इस बात को सुन कर सिब्बो बोला, 'महाराज युग की आयु तो करोड़ों-सहस्रों वर्ष होती है, यह मिट्टी और पानी तो कुछ ही समय चल पाएगा' इस पर गूगा जहर पीर वीर ने कहा, 'सिब्बो, जब तक सूर्य चान्द, सितारे और यह ब्रह्माण्ड रहेगा तब तक इस स्थान की मिट्टी और पानी समाप्त नहीं होंगे और इस स्थान के वायुमण्डल में भी विष को दूर करने की शक्ति रहेगी 'गूगा की यह बात सुन कर सिब्बो बोला, 'महाराज स्थान का चमत्कार देखने की लालसा हैं' सिब्बो की यह बात सुन कर गूगा जहर पीर (वीर) बोले, 'सिब्बो, तेरे धूने के पास जो विल्ल और बेरी के दो वृक्ष हैं उन के कांटे झड़ जाएंगे क्योंकि इस स्थान पर विषैला वृक्ष भी अपने विष का असर छोड़ देगा' गूगा के मुख से ये शब्द निकले ही थे कि सिब्बो के धूने के पास उगे दोनों बृक्षों विल्ल और बेरी के कांटे झड़ गए।

सिब्बो के धूने के पास बेरी का वह वृक्ष अभी तक भी उस वरदान की याद दिलाता है। इस वृक्ष के कांटे गूगे के वरदान से झड़ चुके हैं और वह विल्ल का वृक्ष कुछ वर्ष हए लुप्त हो चुका है। कहते हैं कि इस घटना के उपरान्त गूगा जहर पीर (वीर) ने सिब्बो के साथ बारह वर्षों तक सार पासा खेला और सिब्बो को एक सिद्ध पुरुष की उपाधि से अलंकृत कर उसे चमत्कार युक्त कर के लुप्त हो गए।

सिब्बो की तपोभूमि के स्थान पर अठारवीं शती में मन्दिर का निर्माण हुआ। सिब्बो के वंशज अभी भी पानी और मिट्टी के असर से सांप के काटे लोगों का इलाज करते हैं। मन्दिर के बाहर लार्ड वारेन हैस्टेंगेज का कूआं अंग्रेजी सरकार पर सिब्बो की करामात के प्रभाव का जीता जागता प्रमाण है। कहते हैं कि पहले जब किसी को कोई सांप काट जाता था तो मन्दिर में रखा हुआ नगारा स्वयं बजने लग पड़ता था जिस से सिब्बो के वंशजों को यह विदित हो जाता है कि किसी व्यक्ति को सांप काट गया है और लोग उसे मन्दिर में ला रहे हैं। सिब्बो के समय के लोहे के संगल और धूने का सामान चिमटा इत्यादि सिब्बो के वंशजों ने संभाल कर रखे हैं। सिब्बो को करामात युक्त जान कर दूर-दूर से लोग इस स्थान पर आने लगे और इस स्थान का नाम भरमाड़ पड़ गया अर्थात भरमाड़ शब्द फारसी के शब्द वहर-मार जिस का अर्थ जहर को मारने वाला स्थान का विकृत रूप है। या भरमाड़ शब्द लोगों के आने की भरमार से बना होगा।

अब एक दिन आलम मेघा, भूरू और सिब्बो की माता सिब्बो से मिलने आए। उन्हें अपने किए पर पश्चाताप था परन्तु सिब्बो ने उन का बड़ा आदर सत्कार किया। इस के दूसरे ही दिन सिब्बो हरिद्वार के लिए चल दिए क्योंकि वह अब अधिक देर अपने कुटुम्ब के पास साधू होने के नाते नहीं रहना चाहते थे। कहते हैं कि वहां जा कर उन्होंने जलसमाधि ले ली और जल समाधि लेने के उपरान्त एक रात स्वप्न में उन्होंने अपने पिता आलम, माता सुधावती और अपने भाईयों को अपनी जल समाधि लेने और स्थान की करामात बारे अवगत करवाया। सिब्बो के वंशजों ने उस स्थान को सुरक्षित किया। सिब्बो ने जहां गूगा जहर पीर (वीर) से बारह वर्ष तक सार पासा खेला है उस स्थान की मिट्टी को भंखारा कहते हैं। यह मिट्टी सांप के काटे हुए स्थान पर लेप की

जाती है।

सिब्बो के वंशजों का कहना है कि सिब्बो चमत्कार युक्त होकर जब स्वस्थ हुए तो गूगा पीर (वीर) के कहने पर वह अपने घर अपनी माँ से भिक्षा लेने गए थे। उन की माँ सुघावती (सावित्री) ने उन्हें नहीं पहचना था क्योंकि सिब्बो की बहन शिवा के सती हो जाने के उपरान्त और सिब्बो के वियोग में उस के नेत्रों की ज्योति जा चुकी थी। सिब्बो के चमत्कार से सिब्बो की माता सुघावती (सावित्री) के नेत्रों की ज्योति वापिस लौट आई थी। अपनी माँ से भिक्षा लेकर सिब्बो चले गए और उसके उपरान्त हरिद्वार में उन्होंने जल समाधि ले ली थी। सिद्ध बाबा सिब्बो के घर सिधपुर घाड़ गाँव के पास एक देवी का प्राचीन मन्दिर है। सम्भवत: यह सिब्बो की बहन शिवा की देहरी का स्थल है जिस पर कालान्तर में मन्दिर का निर्माण हुआ है। सिध पुर घाड़ गाँव के पास एक पुराना दुर्ग है। ऐसा लगता है कि यह गढ़ सिध पुरुषों का रहा होगा और इसी के कारण समीप में बसे गांव का नाम सिधपुर घाड़ पड़ गया होगा।

सिद्ध बाबा सिब्बो का नाम और सिब्बो स्थान अपनी करामात के लिए सारे उत्तरी भारत में प्रसिद्ध है। बाबा सिब्बो सिद्ध नाथ सम्प्रदाय के सशक्त सिद्ध पुरुष हुए हैं। जहां बाबा दयोट सिद्ध के स्थान पर पागलपन और कई प्रकार के मानसिक रोगों से छुटकारा मिलता है वहां सिद्ध बाबा सिब्बो के वंशज पानी और मिट्टी के इलाज से प्रत्येक प्रकार के विष को दूर करने की सामर्थ्य रख कर बाबा सिब्बो की करामात की याद दिलाते हैं।

स्व० भीमक्त काले जयन्ती समारोह के अवसर पर शास्त्रीय गायन प्रस्तुत करते हुए युवा कलाकार

हिमाचल की लोक संस्कृति एवं जन जीवन

डॉ. शमी शर्मा

लोक संस्कृति दो शब्दों लोक और संस्कृति से विनिर्मित है। इसे हिमाचल के परिप्रेक्ष्य में देखने से पूर्व लोकशब्द की व्याख्या अभीष्ट है। 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ''श्रोता तथा लोका अकल्पयन'' जीव तथा स्थान दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। डॅा. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य न बताकर नगरों और गाँवों में फैली हुई समस्त जनता से लेते हैं लिया है जिस में व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है।'' उन्होंने ग्राम्य का, अकृत्रिम जीवन बिताने वाले लोगों द्वारा सम्पादित वस्तुओं की ओर संकेत किया है। बाहिर दिखावे से रहित एक सादा सरल जीवन बिताने वाले समाज से है। वस्तुत: इस से स्पष्ट है वह समुदाय जो परिष्कृत लोगों से अलग अपने पुरातन ढंग अपनाए हुए ही लोक की परिभाषा में आए हैं। डॅा. वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है ''कि लोक हमारे जीवन का समूह है। उस में भूत, भविष्यत और वर्तमान सभी कुछ संचित है। वह राष्ट्र का अमर स्वरूप है।'' 'संस्कृति' से अभिप्राय: श्रेष्ठ सुसंस्कृत होने से है। संस्कृति संस्कार ग्राहय है। अच्छे संस्कारों से अन्तर्बाह्य, सुसांस्कृतिक, व्यवहार कुशल होने से है। डॅा. वासुदेव शरण अग्रवाल ''ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा को संस्कृति कहते हैं।'' संस्कार का अर्थ सुधार करना, शोधन करना, अपने जीवन को परिष्कृत, शुद्ध और पवित्र बनाना है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना ही संस्कृति है। संस्कृति का स्वरूप अक्षुण्ण होता है। वह विचार और चिंतन धारा की सरस्वती के समान लुप्त हो कर प्रवाह होती रहती है उस की गति निर्बाध है। वह सदैव जीवंत अमर शाश्वत रूप लिए हुए है। संस्कृति और सभ्यता में आत्मा और शरीर जैसा सम्बन्ध है। सभ्यता यदि बाह्य आवरण है तो संस्कृति उस में चेतना और क्रिया जैसे उस में समाहित है।

यदि संस्कृति के साथ लोक शब्द जुड़ जाने पर उस के अर्थ में परिवर्तन आ जाता है और वही शब्द प्रतिकूल बोधक बन जाता है। परिष्कृत नागरीय परिवेश से हट कर ग्राम्यता के अकृत्रिम लोक मानस, परम्परा और समुदाय के स्वाभाविक व्यवहार से यह शब्द जुड़ कर उसका बोधक बनता है। वह जन मानस की अपरिवर्तित आस्था तथा अवस्था से जुड़ता है। संस्कृति और लोक संस्कृति का भेद बदलाते हुए डॅा. कृष्णदेव उपाध्याय का मत है कि हमारे देश में दो पृथक धाराएँ प्रवाहित होती रही थीं। शिष्ट संस्कृति और लोक संस्कृति। शिष्ट संस्कृति से हमारा तात्पर्य उस अभिजात वर्ग से है जो बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंचा हुआ था। अपनी प्रतिमा के कारण समाज में अग्रणी और पथ प्रदर्शक था तथा जिस की संस्कृति का स्रोत वेद या शास्त्र था। लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय जन साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी। उस की उत्स भूमि जनता थी[6]। डॅा. बलदेव उपाध्याय ऋग्वेद और अथर्व वेद दोनों को शिष्ट संस्कृति और लोक संस्कृति का परिचायक मानते हैं। ''अथर्व वेद के विचारों का धरातल सामान्य जन

जीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जन जीवन।'' लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति के साथ जन जीवन में प्रवाहित होती है। और उसकी सहायक होती है। हिमाचल प्रदेश में इन दोनों धाराओं का प्रवाह अनवरत अनादि काल से चला आ रहा है। ''आर्य और अनार्य दोनों प्रकार की संस्कृतियों का सामंजस्य यहां उपलब्ध है। शिष्ट संस्कृति के रूप में वैदिक, पौराणिक विधि विधान संस्कार यहां प्रचलित हैं। धार्मिक देवस्थानों से सम्बन्धित वैदिक पौराणिक कर्मकाण्ड एवं प्राचीन देवालय उस का प्रमाण हैं तो भी दूसरी ओर जनजीवन से सम्बन्धित आचार विचार, विश्वास परम्पराएँ मूढ़ाग्रह अनुष्ठान, व्रत पर्व, प्रथाएँ जादू टूना, टोटका शकुन अपशकुन त्यौहार रीति रिवाज, गीत गाथाएँ, रूढ़ियां लोक संस्कृति के अन्तर्गत प्रचलित है।'' जो लोग लोक साहित्य को साहित्य नहीं मानते या गंवारू साहित्य कह कर पुकारते हैं वे लोक जीवन के स्रोतों से कोसों दूर हैं। ''भाई की खातिर जान देने वाला मोहणा एक गीतकार के कण्ठ से उतरा नहीं कि समाज के बच्चे, बूढ़े, जवान, मर्द, औरत की जबान पर समा गया है। हमेशा के लिए रहा है। चम्बा की भागदेई, रूपणू, पुहाल, निर्मण्डा री बाह्मणी, नूरपुरे खतरेटी, कुल्लू की लाड़ी शांबली, मोआ रूपी या भाव रूपी, सती चेंखी, खूनी परसराम, मस्त राम, मेंट गंगी, मास्टर लायकराम की घटना, किसी ने लिपिबद्ध नहीं की। दिल से निकली आवाज है जो अमर है।'' वस्तुतः वह हिमाचल की लोक संस्कृति एवं जनजीवन को स्पर्शित करती है।

''हिमाचल के जन जीवन की अजर और अमर परम्पराएँ हैं जिन का सम्बन्ध हिमाचल की लोक-संस्कृति से है। इस जन संस्कृति को वर्ग भेद रहित, एक विशालता लिए प्रदेश ने अपने आंचल में निष्पन्न किया है। कलाकारों के उदमनीय भाव लोक वाद्य, लोक नृत्य का अवलम्बन लिये लोक गीत लोक साहित्य का माध्यम ले कर प्रवाहित हुए हैं। लोक संस्कृति का अविकल रूप आज भी कांगड़ा, कुल्लू, मण्डी, चम्बा, महासु, किन्नौर, लाहुल-स्पिति आदि हिमाचल की पर्वत मालाओं में निवसित जन समुदाय में देखा जाता है। हिमाचल के लोक सांस्कृतिक जनजीवन को मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में बांटते हैं'' —१. लोक विश्वास तथा परम्पराएँ २. रीति रिवाज तथा प्रथाएँ ३. लोक साहित्य। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत पृथवी तथा आकाश, पशु पक्षी, शकुन अपशकुन, जादू टूना टोटका आते हैं। समस्त हिमाचल प्रदेश में अनेक प्रकार के विश्वास प्रचलित हैं। कुल्लू कांगड़ा, महासु, चम्बा आदि क्षेत्रों में एक जैसी मान्यताएँ प्रचलित हैं। नाथ सम्प्रदाय, गुरु गोरखनाथ बाबा दियोट सिद्धा, बाबा जी का घड़ा, चरण पादुका पूजन आदि समस्त हिमाचल में एक धारणाएँ सामान रूप से प्रचलित हैं। बाबे को रोट चढ़ाना, जात्तरा पर जाना, ध्वजा नरेल लेकर चलना, आंगन में अल्पना, चौंक डालना, भित्ती दीवार चित्रांकन करना, तोरण लगाना, वंदनवार सजाना, द्वार पूजन, जल पूजन, मार्ग पूजन, रोट बांटना, नाग धण देना नुआला करना भूंडा यज्ञ, जग करना, कुलजा पूजन, ग्राम देवता, स्थान देवता, क्षेत्र देवता का पूजन करना आदि अनेक विश्वास प्रचलित हैं जो यहाँ की जन संस्कृति का प्रत्यक्ष स्वरूप है।

दूसरी श्रेणी में सामाजिक एवं राजनैतिक जनजीवन पर आधारित, विभिन्न प्रथाएँ एवं परम्पराएँ, रीति रिवाज, व्रत त्यौहार व्यवसाय आदि लिए जाते हैं। कुल्लू के दशहरे का मेला, चम्बा में मिंजर का त्यौहार, लोड़ी, बसोआ, कुल्लू की फागली, चम्बा, कांगड़ा, मण्डी की शिवरात्रि, कांगड़ा, चामुण्डा, ज्वाला मुखी, चिन्तपूर्णी के भगवती के मंदिर, बिलासपुर में दुर्गा भगवती नयना देवी के मंदिर में नवरात्र दुर्गा पूजन, सैरी की सक्रांति का त्यौहार, विविध संस्कार, छठी, पंजाप, जनेऊ, विवाह और मृत्यु संस्कारों में विभिन्न परम्पराएँ प्रथाएँ प्रचलित हैं। उन का सम्बन्ध जन मानस से ओत प्रोत है। व्रत करने की परम्परा, व्रत के पश्चात् मोख, उद्यापन करना, उपासना, अनुष्ठान, देव श्रद्धा देव पूजन, परिवार कल्याण हेतु देवता का जय, भजन कीर्तन कथा

श्रवण, गृह प्रतिष्ठा, देव प्रतिष्ठा विधान कर्मकाण्ड के विधि विधान समान रूप से सारे प्रदेश में प्रचलित हैं। गणराज्य दिवस, हिमाचल दिवस, स्वतन्त्रता दिवस, पूर्णराज्य दिवस, हिन्दी दिवस, पहाड़ी दिवस आदि राष्ट्रीय त्यौहारों को मानने एवं आयोजन करने की भी परम्परा प्रचलित है। इस प्रकार इन के किये बिना कार्य सम्पन्न नहीं माना जाता है ऐसी धारणा एवं लोक विश्वास प्रचलित हैं। हिमाचल की लोक संस्कृति से ये नीर क्षीरवत् आबद्ध हैं।

तीसरी श्रेणी में लोक साहित्य, लोक नृत्य, लोक कथाएँ, कहावतें, सूक्तियां ली जाती हैं। लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक गीत, जिन में संस्कार गीत, प्रेम गीत, श्रम गीत, विरह गीत, करुण गीत आदि पारम्परिक रचनाएँ चली आ रही हैं। उन के लेखक अज्ञात हैं। इन का पीढ़ी दर पीढ़ी धरोहर में आते हुए, मौखिक वाङ्मय स्वरूप बना हुआ है। लोक गीत, लोक कथाएँ, पांवड़े, विविध बारें, वीरता और शौर्यता की गेय गाथाएँ प्रचलित हैं।लोक कथाएँ भी अनेक प्रचलित हैं। फुरसत के समय में मनोरंजन के समय उन्हें लगा दिया जाता है। काथू कथा कहता है और घंटों पास बैठे सुनते रहते हैं। कहावतों और सूक्तियों के अक्षय भण्डार भरे हैं। लोक नाट्य और लोक नृत्य जन समुदाय के जीवन का एक अविभाज्य अंग बना हुआ है। कुल्लू, कांगड़ा, चम्बा, महासु, सिरमौर, किन्नौर, लाहुल स्पिति के अपने अपने पारम्परिक आंचलिक नृत्य, हृदय की धड़कन और पांव की थिरकन लिये जन समुदाय में संजोए हुए हैं। लोक नृत्य के विविध रूप प्रचलित हैं। हृदय का आंतरिक उल्लास और जन अनुरंजन इन में भरा है। इन तीनों का समाहित रूप ही हिमाचल की लोक संस्कृति और जनजीवन है।

इस के अतिरिक्त ढोलरू, गुग्गा छतरी, चन्दरौली करियाला, भगत, स्वांग लोक नाट्य एवं प्रहसन प्रचलित हैं जिन से हिमाचल की लोक संस्कृति जीवन्त बनी है। पंच भीष्म एकादशी, रली की पूजा, तुलसी विवाह, गोवत्स द्वादशी, रात्रि जागरण, जगराता, बन्दों का गान आदि अनेक पौराणिक, रूढ़िगत मान्यताएँ प्रचलित हैं जो हिमाचल के जनजीवन का आधार हैं। शिव स्वरूप नगाधिराज हिमालय, हिमाचल में देवतात्मा है। शैव और शाक्त लोगों का प्रदेश है। हिमाचल ही शंकर है और उस में व्याप्त लोक-संस्कृति ही पार्वती है। पर्वत मालाओं में प्रस्तुत, देवांगनाओं की क्रीड़ा भूमि, किन्नरों गंधर्वों की रसवन्ती स्थली, जन समुदाय की संस्कृति है। यहां पर ही निवसित, वर्चस्वी, मेधावी ऋषि जन इसे देवभूमि मान कर अमर साहित्य का सृजन कर गये। उन ऋषियों की धरोहर सदियों से उस का स्तवन करते आ रहे हैं। यही लोक-संस्कृति हमारा प्राण है, जीवन आधार है। आशुतोष, शिव का यशोगान है। यह हिमाचल केवल मात्र जड़ शिलाओं भूधर खण्डों का पर्वत नहीं भारतीय संस्कृति का सृजक एवं पोषक है। शैल पुत्री पार्वती जी लोक-संस्कृति के रूप में विद्यमान है उस की क्रीड़ास्थली है। यही देवतात्मा शंकर की संगिनी उमा, गिरजा, भवानी का स्वरूप लिये हुए है। अमर हिमानी शिखरों में अव्यक्त का जो सौन्दर्य भरा है वही देवतात्मा शंकर है। उस की क्रीड़ा में फैली लोक संस्कृति, अपनी अजर, अमर परम्पराओं को लिये पतित पावनी पर्वती है। लोक भाषाओं, लोक वाङ्मय गीतिकाओं में श्रुति मधुर स्तवन लोक संस्कृति गिरा रूप धारण किये हुए हैं। जनजीवन की उदारता, विशालता, भाव प्रवणता इसी में निहित है।

लोक परम्पराओं से जुड़े जन्म संस्कार गीत

राम लाल पाठक

हिमाच्छादित पर्वत शिखरों से झर-झर का निनाद करते हुए श्वेत पानी के झरने उछलते-कूदते, नदियों की गहराईयों में समा जाते हैं। नदियां कल-कल की रागिनी बन कर पहाड़ी और घाटियों के बीच में अपना प्रभाव छोड़ती हुई अपनी दिशा की ओर अग्रसर होती हैं। नदियों के तटों से लगते ढलानदार सदाबहार जंगल पर्वतों की चोटी तक अपनी ओढ़नी-सी बिछा देते हैं, इन जंगलों के एक ओर बसी होती हैं-हिमाचल के लोक मानस की बस्तियां, जहां से प्रकृति के साक्षात् दर्शन होते हैं। हल्के-हल्के पवन के झोकों से हिलोरें मारते देवदार और चीड़ के पेड़ों की पत्तियों से सांय-सांय की स्वलहरियां झर-झर और कल-कल के स्वरों में मिश्रित होकर आर-पार पर्वतों से टकराती हैं तो प्रकृति के मधुर स्वर का आभास होता है।

प्रकृति के ऐसे वातावरण में रहने वाला लोक मानस, प्रकृति की इन स्वर लहरियों के स्वर से स्वर मिलाने की प्रक्रिया को दोहराता हुआ गुनगुनाने लगता है। यह गुन-गुनाना ही स्पष्ट रूप में आने से लोक साहित्य का अभिन्न अंग बन जाता है। जिसका पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचार एवम् प्रसार होता है। कालान्तर में समाज की अभिव्यक्ति बन जाती है। आने वाली पीढ़ी को ये सांस्कृतिक धरोहर विरासत में मिल जाती है। लोक साहित्य में लोक गीत को लोक साहित्य के विकसित रूप माना गया है। लोक जीवन में सुखद-दुखद घटनाओं का वर्णन अवसर और अवस्था अनुसार मिलता है। पहाड़ों के झरनों, नदियों और जंगलों के स्वरों से निकले ये लोक गीत विशेष अवसरों पर गाये जाते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के अन्तराल में गाए जाने वाले गीतों को संस्कार गीत के नाम से जाना जाता है। जिनका मानव जीवन से गहन सम्बन्ध जुड़ा होता है।

प्रदेश के अन्य जिलों की भान्ति महर्षि व्यास की तपोभूमि बिलासपुर ज़िला भी लोक संस्कृति में मौलिकता लिए हुए है। पर्वतीय आंचल और मैदानी भू-भाग के मध्य बसा होने के कारण यहाँ के लोगों के जीवन में दोनों ओर की संस्कृतियों से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है।

इस जिला में अनेक प्रकार के लोग गीतों का प्रचलन है। मोहणा लोकगीत के अनुसार भाई-भाई के प्यार को अनुभव किया जा सकता है। 'गम्भरी गीत' से खाना-पीना और आनन्द से जीवन यापन का सन्देश मिलता है। चन्दो ब्राह्मणी, अच्छरो और गंगी गीतों का भी प्रचलन है। उसी तरह जन्म संस्कार गीत, मुण्डन संस्कार गीत तथा विवाह गीतों को समयानुरूप गाया जाता है।

जन्म संस्कार गीतों को स्थानीय बोली में (प्याईयां) या 'वधावा गीत' कहा जाता है। प्रसूता जब शिशु को जन्म देती है, पास-पड़ोस की महिलाएं एकत्रित होती हैं और प्याईयां गीत गाती हैं। गांव में या आस-पास के गांव में एक बृद्धा होती है जो दाई का काम करती है। वह गर्भ की पूर्ण जानकारी रखती है। स्थानीय बोली में एक कहावत प्रचलित है— 'दाईयां-माईयां से पेट बुझे नी हुन्द्रे।' जब महिला पांच छः मास की गर्भवती होती है तो वह दाई से सलाह लेती रहती है। दाई उसका ढंग से उपचार करती है।

जन्म संस्कार गीतों में नवजात शिशु के जन्म में माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी की प्रसन्नता का वर्णन मिलता है, वहाँ धार्मिक दृष्टि से भी ये गीत अपना विशेष महत्व रखते हैं। इन गीतों में भगवान राम तथा श्री कृष्ण के जन्म का भी वर्णन मिलता है। गीत की नायिका अपनी सखी-सहेलियों से कहती है कि अयोध्या नगरी में राजा दशरथ के घर में लड़के का जन्म हुआ है। गीत की पंक्तियां इस प्रकार से है :—

'जुध्या जे नगरी सुनो मेरी बहनों,
दशरथा रे घरे लाल जमेया,
लाल जमेया नानाकिए सुणेया,
तां पर कुहरे नगारे,
तां पर वण्डियां वधाईयां।

गीत में कहा गया है कि अयोध्या नगरी में राजा दशरथ के घर में लाल पैदा हुआ है। पुत्र को अमूल्य कहा गया है जिसके पैदा होने पर सबको प्रसन्नता होती है। यह शुभ समाचार जब ननिहाल में सुना गया तो वहां भी नगारों की मंगल ध्वनि गूंज रही है। बधाईयां दी जा रही हैं, मिठाईयां बांटी जा रही है। चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण बना हुआ है। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण के जन्म का वर्णन भी अनेक संस्कार गीतों में आता है।

एक गीत के अनुसार तो श्री कृष्ण के जन्म का महीना और वार का भी परिचय मिलता है। गीत की पंक्तियां कुछ इस प्रकार से हैं :-

केहड़ा मीहणा ओह केहड़ा बार,
कृष्णा ने जन्म लया
भादों मीहणा ओर बुधवार,
कृष्णा ने जन्म लया।

भादों महीने की अष्टमी तिथि तथा बुधवार को श्री कृष्ण ने जन्म लिया। इनका जन्म कारावास में ही हुआ माना जाता है। परन्तु एक लोक गीत के अनुसार श्री कृष्ण का जन्म श्री वासुदेव के घर में ही दर्शाया गया है :-

बासुए दे घरेरे कृष्ण जमेया,
लोई होइयां चऊं कुण्ठं जो,
कुहरदे नगारे नौपत्त होइया,
चलो मेरी सईयों मथुरा पुरी में।

उपरोक्त गीत का सम्बन्ध भगवान श्री कृष्ण जी के जन्म से नहीं रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है, लेकिन बच्चे की तुलना भगवान श्री कृष्ण से की होगी। बच्चा पैदा होने पर चारों ओर प्रसन्नता होती है। चारों ओर प्रकाश प्रज्जवलित होता है। नगारों की मंगल ध्वनि गूंजती है। इस प्रकार ये गीत परिवार को प्रसन्नता प्रकट करते हैं वहां धार्मिक भावना से भी जुड़े होते हैं।

प्रसव के पश्चात् घर में सूतक माना जाता है। पण्डित लोग इस दौरान उस घर में खाना नहीं खाते

है। दस-बारह दिनों के उपरान्त गृह-शुद्धि के लिए हवन किया जाता है। जिसे स्थानीय बोली में 'हूम' कहा जाता है, बच्चे का नामकरण संस्कार भी होता है। इस दिन पण्डित तथा कन्याओं को भोजन करवाया जाता है। 'हूम' से पूर्व तक घर में पूजा-पाठ तक भी नहीं होता। जिस घर में प्रसव हुआ होता है उस घर के सदस्यों को अपवित्र माना जाता है। केवल उस घर की लड़कियां ही पूजा पाठ कर सकती हैं। क्योंकि लड़की को पराया माना जाता है। उन्हें उस परिवार से नहीं जोड़ा जाता। पूर्ण रूप से उनका सम्बन्ध पति के घर से जुड़ा होता है।

प्रसूता को जब प्रसव वेदना होने लगती है तो उससे सम्बन्धित यह गीत भी गया जाता है। इस गीत में प्रसव के समय किन-किन बातों का ध्यान रखना होता है उस पर प्रकाश डाला है :-

पहलड़ी पीड़े सुती ससुआ जगाओ,
सासु जी तुसे जागी जाओ
महले दीपक जगाओ,
सूण संगेला कराओ,
मेरी जान जान्दी पीड़ा दे नाल।

प्रसव की पहेली वेदना होती है तो प्रसूता कहती है कि सर्वप्रथम मेरी सोई हुई सास को जगाओ। सास जी उठ गई तो वह कहती है कि रात का समय है घर में अन्धेरा छाया हुआ है इसे दूर किया जाए दीपक जलाकर फिर घर में झाड़ू-पोछा किया जाए। मैं अब कुछ नहीं कर सकती क्योंकि प्रसव वेदना से मेरे प्राण निकलने को हो रहे हैं। फिर उसे प्रसव की दूसरी पीड़ा आती है तो वह कहती है :-

दूजिए पीड़े सुते कन्ता जो जगाओ,
कन्त जी तुसे जागी जाओ,
शहरे-बजारे जाओ,
दाईया माईया लयाओं,
मेरी जाना जान्दी पोड़ा दे नाल।

प्रसव को दूसरी वेदना होती है तो प्रसूता अपने पति को जगाने के लिए कहती है। उनसे कहती है कि शीघ्र उठो और शहर की ओर चल पड़ो वहां से दाई को लेकर आओ क्योंकि प्रसव के समय 'दाई' का होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में 'दाई' को पूरा अनुभव होता है। वह आपात स्थिति में प्राथमिक सहायता प्रदान करती है। प्रसव जल्दी होने के उपाय भी जानती है।

जब प्रसूता को तीसरी वेदना आती है तो वह कहती है कि अब तो प्राण निकल ही जाएंगे परन्तु मेरे ससुर जी को भी जगा दो :

तीजिए पीड़े सुते सौरे जो जगाओ,
सौरा जी तुसे जागी जाओ,
सुते बणिया जगाओ, सूड पंजोरिया ल्याओ,
मेरी जान जान्दी पीड़ा दे नाल।

ससुर जी उठकर शहर जाएंगे और वहां से सौंठ-पंजीरी आदि लेकर आएं। ये चीजें प्रसव के लिए सहायक होती हैं। जब बच्चा पैदा हो जाता है वह भी लड़का तो प्रसूता कहती है कि अब मेरी मां को बुलाया जाए। वह बच्चा पैदा होने का समाचार शीघ्र ही अपने मायके में भेजना चाहती है ताकि अपनी प्रसन्नता में वह अपने माता-पिता, भाई व भाभी को भी शामिल कर सके। काला काग ही उड़कर चला जाता और यह सन्देश दे आता अपनी प्रसन्नता तथा माता-पिता की उपस्थिति इस गीत से व्यक्त होती है :

कालेया कागडूआ मेरे प्योके जाई आयां
मेरी अम्मा जो कही आयां,
बेटिऐ ओलरू जाया, झगू-टोपू लई आयां,
झगू-टोपू लई आयां, साड़ी, सूट लई आयां।

अर्थात् वह काले कौवे से कहती है कि तू उड़ कर सीधा मेरे मायके चला जा। ये शुभ समाचार देकर आना कि आपको बेटी ने बेटे को जन्म दिया है। माँ को कहना कि बच्चे के लिए 'झग्गू-टोपू' (बच्चे के कपड़े) तथा मेरे लिए बढ़िया सी साड़ी या सूट लेकर आना।

घर में जब बच्चे का जन्म होता है तो सारे परिवार में प्रसन्नता छा जाती है। बच्चे की बुआ सबसे ज्यादा प्रसन्नता जताती है। वह भी शिशु के लिए चान्दी के घुंघरु वाले कंगन लाती है। बच्चे के लिए कपड़े जिसे स्थानीय बोली में 'झग्गू-टोपू' देना तो सभी रिश्तेदारों में रिवाज है। बच्चा सबके लिए खिलौना सा बन कर रह जाता है। सब उसे प्यार करते हैं। प्यार से यहां तक भी कह देते हैं कि तू किसका बच्चा है यह बात भी लोक गीतों से छुपी नहीं है :-

ओह रूण झुंझणुआं किसदे बेड़े आया,
ओह रूण झुझणुआं बापुए बेड़े आया।

हे छोटे से खिलौने की तरह बच्चे! तुम किसके घर में आए हो। प्रत्युत्तर में महिलाऐं गाती हैं कि बच्चा खुशियां लेकर बापू (पिता) के घर बेड़े में आया है। इसी तरह से परिवार के वरिष्ठ सदस्यों का नाम लेकर यह गीत गाया जाता है। बालक किस-किस को प्यारा है और उसके पैदा होने से किस-किस के दुःख दूर हुए। इस गीत में यह बताया गया है :-

गिगा जमेया किस दे मन गमेया,
किस दे दुःख दूर हो गए
गिगा जमेया अम्मा दे मन गमेयां,
बापू दे दुःख दूर हो गए।

मां को बच्चा सब से प्यारा होता है। वह मां की ममता को और अधिक उजागर कर देता है उसे अपना बच्चा सबसे प्यारा होता है। मां की इच्छा का फल बच्चा होता है। उसका पिता जो गृहस्थी की गाड़ी खींचता, दुःख उठाता है। जब वह बच्चे का बाप बनता है तो उसे प्रसन्नता होती है और उसके दुःख दूर हो जाते हैं। इसी तरह बच्चा दादी का भी आंखों का तारा होता है। दादा के भी दुःख दूर हो जाते हैं।

नवजात शिशु का पिता प्रसव के दूसरे तीसरे दिन बधाई लेकर अपने ससुराल जाता है वहां भी गांव की

महिलाएं एकत्रित हो जाती हैं और प्याईयां गाती हैं। बच्चे का पिता लड्डू पताशे या शक्कर अपने साथ ले जाता है और वहां सबको बांटता है। ससुराल की ओर से भी अपने जवांई (दमाद) को कपड़े दिए जाते हैं। माथे पर कुम-कुम का टीका लगा कर मौली (डोरी लाल) से बांध देते हैं। उसके बाद वह (हूम) नामकरण की तिथि भी बताता है। बच्चे के लिए छोटी सी चारपाई उसके अनुसार तलाई, रजाई, बच्चे को कपड़े बच्चे के माता-पिता के कपड़े देते हैं। उस उत्सव को स्थानीय बोली में 'छावीं' (पुरात की तरह बगड़ घास और खजूर का बना रोटियां रखने की टोकरी) कहा जाता है। इसी उद्देश्य से इस उत्सव का नाम 'छावों' पड़ा होगा। इस दिन बच्चे के घर वालों की ओर से तथा ननिहाल वालों की ओर से 'दाई' को श्रद्धानुसार कपड़े का सूट या कोई अन्य उपहार दिया जाता है। इसके अतिरिक्त नवजात शिशु की बुआ (पिता की बहन) भी अपनी ओर से 'छाबीं' लाती है। इस उत्सव को 'छठियों' के नाम से जाना जाता है।

इस दिन को अधिकतर बच्चे के पिता अपने बच्चे का मूंह देखते हैं। श्रद्धानुसार उसके सिर के ऊपर से कुछ पैसे चारों ओर घुमाता है और 'दाई' को देता है।

इस प्रक्रिया को स्थानीय बोली में (वारण्ड़ा) कहा जाता है। वारण्ड़ा करने से ग्रह ठीक हो जाते हैं। बच्चे की अधिकतर देखभाल दाई ही करती है। कई लोग तो अपने बच्चे को स्तन पान भी दाई का ही करवाते हैं। कहा जाता है कि (दाई) का दूध पिलाने से बच्चा निडर होता है।

प्रसूता के लिए हल्का भोजन खाने को दिया जाता है। पीने के लिए साधारण पानी नहीं दिया जाता। एक पतीले में पानी उबाला जाता है तो उसमें छोटी इलायची और जीरा भी डाला जाता है। इसे स्थानीय बोली में 'सफपाणी' कहा जाता है। दो,तीन दिन के लिए एक ही बार बना लिया जाता है। फिर भी प्रसूता जिसे नगोगी या पालथी स्थानीय बोली में कहा जाता है, कमजोरी के कारण उसका मुंह सा सूखने लग जाता है। सास उसे इलायची या जीरा चबाने के लिए देती है,इससे सम्बन्धित यह गीत प्रचलित है।

जीरा लै सुहागिन ईलायची लै,
तिखने हुन्दे जीरे रे पात,
सदा मैनू बुरा लगेया।

प्रसूता कहती है कि मुझे जीरा या ईलायची बुरी लगती है। खाते-खाते मेरे बुरे हाल हो गए हैं। जीरे के तीखे दानें मुंह में चुभते हैं और रोज-रोज मुझे बुरा भी लगता है। परन्तु बालक को देखकर वह प्रसन्न होती है। उसे बालक भगवान श्री कृष्ण का रूप दिखाई देता है उसे गीत के माध्यम से वह कहती है :

काले-कुण्डल वी मेरे ओलर दे,
अम्मां वी जीये बापू वी जीये,
सारा जीये परिवार ओलर दा।

गीत के माध्यम से वह कामना करती है कि मेरा बच्चा भी खुश रहे और हम दोनों पति-पत्नी भी खुशी से जीवन व्यतीत करें इसके साथ ही परिवार में खुशहाली बनी रहे। इसी तरह गीत को अगली पंक्तियों में भी सास-ससुर तथा देवर-ज्येष्ठ आदि सब रिश्तेदारों को प्रसन्नता की कामना करती है ।

परन्तु बालक को अपनी मां का अनुभव नहीं हो पा रहा है क्योंकि उसे दाई ही गोदी पकड़ती है और वही नहलाती भी है। इस गीत के माध्यम से वह दाई से पूछता है :

गिग्गा जे पूछदा दाईयां माईयां,
कौन मेरो माई जी,
हत्थे लैन्दी मदानी घरा री रानी
वही तेरी माई जी,
गिग्गा जे पूछदा दाईयां माईयां
कौन मेरा बापू जी,
हत्थे लैन्दा बाजा महला दा राजा,
वही तेरा बापू जी।

अर्थात् बच्चा जब जन्म लेता है तो वह अपनों को भी नहीं पहचानता। दाई उसे बताती है कि जो दही बिलो रही है जिसके हाथ में मदानी है यानि जो दूध और पूत वाली है घर की मालकिन है वही तेरी माता है। फिर बच्चा अपने पिता के बारे में पूछता है। दाई उसे बताती है कि हाथ में बाजा यानि मेहनत से खुशी उत्पन्न करने वाला तुम्हारा पिता है। बच्चा उत्पन्न होता है हर विवाहिता मो मां बनने की लालसा होती है जब वे किसी के घर में बच्चे के जन्म का शुभ समाचार सुनती है तो उसे भी पुत्र मोह जकड़ लेता है। इस गीत के माध्यम से वह अपनी सखी से कहती है :-

उठ सखी, चल सखी पता ये लियाईये,
मन्दला ये किस घरे बजेया,
बडियां जठाणियां रे जमेया सपूत,
मन्दला उस घरे बजेया
उठ पिया चल पिया टका लै पचास,
ओलर मूल्ये मंगवाईए,
मूल्ले नीं मांगे ओलर नीं मिलदे,
राम दिया सो मिल जाए।

एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि चलो सखी ये पता लगाकर आते हैं बधाई का नगारा किस घर में बज रहा है। फिर उसे ज्ञात होता है कि जेठानी के पुत्र उत्पन्न हुआ है। वहीं से नगारे की मंगल ध्वनि आ रही है। वापिस आने पर वह अपने पति से कहती है कि उठो चलो और पैसे लेकर चलते हैं। कहीं से बच्चा गोद लेकर आते हैं परन्तु प्रत्युत्तर में वह कहता है कि दूध पूत खरीद कर नहीं होते हैं यदि भगवान दे तो ही होते हैं। साथ में वह पुण्य कमाने की ओर भी संकेत करता है तो वह कहती है :

उठा पिया, चल पिया, टका लै पजाह,
खुआ बौड़ी दवाईए,
आवे मुसाफिर पिवे ठण्ड़ा नीर,
नाम तुम्हारा लीजिए।

चलो फिर चलते हैं तथा धन रुपये भी ले रखते हैं। कुआं खुदवाएंगें तथा बौड़ी बनवाएंगे आते जाते मुसाफिर जब वहां पानी पीएंगे तो प्रसन्न होकर तुम्हारा नाम लेंगे और तुम्हें अशीष देंगें।

जिस दिन बच्चे का नामकरण संस्कार होता है तो नवजात शिशु की नानी आती है उसकी नानी क्या-क्या लाती है :---

ओलर दी नानी आई,
क्या-क्या लई आई,
गले जो जंजीर लियाई,
हत्थे जो छणाकागणू, ओलर बेटा तुड़बुड़ खेलेगा।

नानी शिशु के लिए क्या-क्या लाई है। हाथों के लिए चांदी के बोर (घूंगरू) वाले कंगन भी लाई है। इसके अतिरिक्त बहुत से खिलौने भी लाई है। जिनसे बच्चा मस्त होकर खेलेगा।

जब बालक थोड़ा बड़ा होता है तो तो उसे जादू टोना तथा बुरी नजर से बचाने के लिए उसे काजल लगाया जाता है तथा माथे पर भी काजल का टीका लगाया जाता है। 'डोड़ा' लेकर उसे चान्दी से मढ़कर काली डोर से पैर में बांधा जाता है। काली डोरे उसके गले में या हाथों में बाधते हैं। यदि बालक रात को अधिक रोये तो लाल मिर्च उसके ऊपर से घुमाकर चूल्हे में डाल देते हैं ताकि बुरी नजर जिसे स्थानीय बोली में 'छिड़क' कहा जाता है टल जाती है। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा हो जाता है तो उसकी मां घर का काम करने लगती है परन्तु बालक चुप नहीं बैठ सकता और न ही माँ से सम्भाला जाता है। इससे सम्बन्धित यह गीत गाया जाता है :-

मैं कातन बैठनी जी,
मेरा लाल पया जो मेरी गोदी,
मैं लई नी जानूं ससु जी
देई नी जानूं लोरी,
मैं आपा खल्यांगी नी बहुए, आप देऊंगी लोरी ।

बच्चे की मां चरखा कातने बैठती है। बच्चा भी उसी की गोदी में बैठा है। चरखे में तान्द डालते समय उससे बच्चा सम्भाला नहीं जाता। न ही उसे लोरी देनी आती है जिससे बच्चा सो जाए। जब वह बालक पकड़ने में अपनी असमर्थता व्यक्त करती है। तो सास कहती है कि बालक को मेरी गोद में दे दो। इसे मैं खेलने में लगाती हूँ और लोरी देकर सुला भी दूंगी। इसी तरह बच्चा दिन प्रतिदिन बाल्यावस्था सरकता जाएगा। फिर एक दिन वह परम्पराओं से जुड़े समाज का विशेष अंग बन पाएगा।

मण्डियाली लोकगाथाओं में श्रवणकुमार

डॉ० हेमप्रभा शर्मा

लोकगाथायें विशेष व्यक्ति से सम्बन्धित होती हैं तथा विशेष अवसर पर गाई जाती हैं। लोकगाथा में संपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होती है इसीलिए ही अधिक लम्बी होने के कारण लोकगाथाएं, लोकगीतों की भांति जन-जन की कंठमाला न बनकर कुछ जातियों व व्यक्तियों के दायरे में सीमित रहकर उनके जीविकोपार्जन का साधन बन गई हैं। इन गाथाओं में मंगलाचरण का प्राधान्य रहता है। गायक सर्वप्रथम लोकगाथा के प्रारम्भ में सभी देवी-देवताओं की बंदना करता है तथा अन्त में धन-सम्पत्ति की बढ़ोतरी की कामना करता है। ये गायक सारंगी, डमरू, थाली, ढोल, घंटी बजाकर विशेष अवसरों पर घर-घर जाकर लोकगाथा गाते हैं। इनका नृत्य व संगीत के साथ अभिन्न साहचर्य होता है। ये लोकगाथायें हमारे समक्ष युग विशेष तथा जाति-विशेष का चित्र उभारती हैं। इसीलिए इन लोकगाथाओं में स्थानीय मान्यताओं, विश्वासों और सामाजिक परम्पराओं का उल्लेख भी पूर्णरूप से रहता है। धार्मिक तत्व की अधिकता के कारण तथा ग्रामीण समाज की प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा का प्रयोग होने के कारण अपने स्वाभाविक प्रवाह में लोकगाथायें ग्रामीण समाज को अधिक प्रभावित करती हैं। इस भांति जनपदीय भाषा और पुनरावृत्ति के कारण लोकगाथा अधिक प्रभावशाली व बोधगम्य होती हैं।

मण्डी जनपद में लोकगाथाओं को 'नाथ' और 'जोगी' जाति के लोग अधिकतर गाते हैं। लम्बी अवधि तक मौखिक परम्परा में प्रचलित रहने के कारण इनमें समय-समय पर परिवर्तन आते रहे हैं लेकिन मण्डी जनपद के गायकों ने इनकी आत्मा को सुरक्षित रखा है। यहां के गाथाकार अधिक गूग्गा व श्रवणकुमार की जीवन गाथा घर-घर जाकर सुनाते हैं। श्रवणकुमार की जीवन गाथा को यहां के नाथ जाति के लोग माघ महीने में डमरू, थाली, घंटी बजाते हुए घर-घर जाकर गाते हैं। श्रवणकुमार की गाथा को ये गायक 'बसन्त-बहारा' का नाम देते हैं। गाथा का प्रारम्भ ये गायक मंगलाचरण से करते हैं तथा लोगों को संसार की क्षण भंगुरता की ओर संकेत करते हुए उन्हें सत्यपथ पर चलने की प्रेरणा देते हैं। श्रवणकुमार की जीवनगाथा की पंक्तियां नीचे उद्धृत की जा रही हैं।

जागो-चेतो धरमीयो, नींद न करो प्यारी,
जैसा सुपणा रैण दा, ऐसे भई संसारी,
माता तीरथ, पिता तीरथ, तीरथ भाई दस बंध भाई,
बचने-बचने गुरु तीरथ, कुंजी रहे गुरु रे हाथाई,
हेओड़ेया मन लोभीया, कीतना खट्या पाया,
एक धरम मैं खट्या, कीता लंगड़ा पार,
अंधा-अंधली भूले कदार, धरतरी माता से मांगे उधार,

पौण-पाणी से मांगे उधार, धौले बैल से मांगे उधार,
गती-सती से मांगे उधार, वासकी नाग से मांगे उधार,
सभी देवियों से मांगे उधार, सभी देवताओं से मांगे उधार
सोना नहीं पजे हल वाईके, मोती न लगदे डाला,
करम न मिलदे मांगके, पुत्र न मिलदे उधारा,
मिलता नहीं कोई जुलता सोता, अंधे रिखी दे घर दे दिया पुता,
एकी माई को अंचल नीर, दुजे माई को पनपा खीर,
तीजे माई को डोलदे कान, चौथे माई को बुझया माये,
पांचवे माई को पांज अंगलियां, छठे माई को नहशा केशा,
सातवें माई को रक्त का बिन्दा, आठवें माई को सखण पींड़ा,
नौवें माई को लागे हुंकार, दसवें माई को हुआ सरवण कुमार,
पढ़ीये-गुणीये वेदा चारी, ब्याही के लाई थी सांवली नारी,
अगे बखा देखया सौरा भी अंधा, पीछे बख देखया सास भी अंधी,
सुन-सुन कन्ता मेरे बोल, कर दे पूरा तराकड़ दा तोल,
अंधी सासा वन में छोड़, अंधे सौरे कुंए में डोल,
हट-हट नकरमीये, तेरा मुख कभी न देखीये,
जे पर छोड़ूं अंधी माया, हुई जांग सरबण धौली काया,
जे पर छोड़ूं अंधे वापू, श्री कृष्णा भगवाने देणा सरापु,
लेगर सासे आपणा बांदा, सास निकली दड़दड़ाई, के गुना कीता मेरीये धीये,
तेरीये धीये कहे मंदे बोल, मात-पिता का न रखया तोल,
सुण-सुण मात-पिता मेरे बोल, करीदिता तराकड़ दा पूरा तोल,
सरवण बेटे बुद्ध कमाई, आगे किता वापू पीछे कीती माई, चला गया गंग केदार नूं,
बारह बरस की उजड़ भई, पजदा अन्न न बगदा पाणी,
सुन-सुन बेटा सरबणा, इसे मधुवन में प्यास लगी,
एक, दो, तीन, चार पांज बण ढूंढे पाणी न मिले माई न बाप,
जिस बण में बेटा दाड़-दड़ुके, उस बण में पाणी कभी न सुक्के,
जिस बण में कोई सेंऊरी डाली, उस बण में बेटा पाणीयो की नाली,
जिस बण में बेटा गरडा बोल, उस बण में कभी अन्त न तोल,
काजली-बिजली बणे तालाब, धोते कंगन धोते पांव,
डोल-डालके भरया नीर, दशरथ शरबण को मारया तीर,
मैं नी बुझया सका भाणजा, मैं बुझया नहारेया चोर,
पीठी लया सका भाणजा, हाथा लया पाणी दा लोटा,
पाणी पीओ अम्मा, पाणी पीओ बापू,
तू नहीं है बेटा सरबण राओ, तू तो है दशखत्री राओ,
सक्का मारया भाणजा, बहुता-बहुती होया अन्यायो,

जींऊदा है बेटा अणी मिलाओ, मुड़दा है तो दाग दगाओ,
चालण डाल दुकाया, दांये हाथे चीखा देणी, बांये हाथे देणे दाग।

अर्थ धर्म में तत्पर लोगो! अब तुम काम-वासना की निद्रा को त्यागकर सत्कर्म में लग जाओ क्योंकि इस संसार का ऐश्वर्य उतना ही अस्थायी है जितना कि रात्रि का स्वप्न। माता-पिता, भाई-बंधुओं व गुरु की सेवा का फल तीर्थ फल के समान है। ज्ञानरूपी ताले की चाबी गुरु के हाथ में होती है। अर्थात् गुरु की कृपा के बिना ज्ञान-प्राप्ति नहीं होती है। हे अस्थिर व लालची मन! तूने अभी तक क्या अच्छा कार्य किया है। मैंने एक लंगड़े को नदी के पार पहुंचाया यही एक अच्छा कार्य किया है। अंधे ऋषि ने अपनी पत्नी के साथ पुत्र-प्राप्ति के लिए मनौती की। धरती माता से भी विनय की कि वह उन्हें उधार में ही बेटा दे दे, (यदि उनके भाग्य में बेटे का सुख नहीं है) देवस्थानों के जलस्रोतों की भी पुत्र-प्राप्ति के लिए मनौती की, शिव भगवान के सफेद बैल की भी मनौती की, सती औरतों की भी मनौती की, वासुकी नाग की भी मनौती की, सभी देवी-देवताओं की पुत्र प्राप्ति के लिए मनौती की। सोने की खेती हल जोतकर नहीं होती है, मोती पेड़ों पर नहीं लगते हैं, किसी के भाग्य को मांगकर नहीं लिया जा सकता है, उधार में पुत्र नहीं लिये जाते हैं, सबके आशीर्वाद के फलस्वरूप अन्धे दम्पती के घर श्रवणकुमार पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। एक और दूसरे महीने में श्रवण कुमार की मां के गर्भ में पानी इकट्ठा हुआ, तीसरे और चौथे महीने में श्रवणकुमार की मां को गर्भ की स्थिति का पता चला, पांचवे और छठे महीने में श्रवणकुमार की पांचो उंगलियों तथा नाखून व बाल बनने शुरु हुए, सातवें और आठवें महीने में श्रवणकुमार का शरीर पूर्णरूपेण बन गया, नौवे तथा दसवें महीने की एक-एक घड़ी व क्षण बीतने पर श्रवणकुमार का जन्म हुआ। जब श्रवणकुमार बड़ा हुआ तो वेदाध्ययन करने के पश्चात् श्रवणकुमार की शादी एक सांवली औरत के साथ हो गई, उसने घर आकर देखा कि उसके सास-ससुर अंधे हैं, वह श्रवणकुमार से बोली कि अंधी सास को जंगल में छोड़कर तथा अंधे ससुर को कुंए में फैंककर उनसे छुटकारा प्राप्त कर। श्रवणकुमार अपनी पत्नी से बोला कि 'दुष्ट कुलटा औरत तू मेरे सामने से दूर हो जा। मैं तेरा मुंह कभी भी नहीं देखूंगा। यदि मैं अन्धी मां को जंगल में छोड़ूं तो मुझे इस पाप से कोढ़ हो जायेगा, यदि मैं अंधे बाप को कुंए में फैंक दूं तो कृष्ण भगवान मुझे शाप देंगे।' श्रवणकुमार अपनी पत्नी को उसकी मां के पास छोड़ आया और बोला कि तू अपनी अमानत सम्भाल। सास क्रोधित होकर बोली कि 'मेरी बेटी ने क्या गुनाह किया है?' श्रवणकुमार बोला कि 'तेरी बेटी ने कटु वाक्य बोलकर मेरे मां-बाप की थोड़ी सी इज्जत भी नहीं की।' श्रवणकुमार घर आकर अपने मां-बाप से बोला कि उसने अपनी पत्नी को उसके मायके पहुंचा दिया है। बुद्धिमान श्रवणकुमार ने तराजू के पलड़े में अपने मां-बाप को रखा और उन्हें गंगा, केदार आदि तीर्थ करवाने चला गया। बारह सालों से सूखा पड़ा हुआ था न अनाज की उपज होती थी और न ही पानी बरसता था। जंगल के रास्ते में श्रवण के मां-बाप उससे बोले कि उन्हें इस सुन्दर जंगल में प्यास लगी है, श्रवणकुमार ने सारे जंगल में अपने मां-बाप के लिए पानी ढूंढा लेकिन उसे कहीं भी पानी नहीं मिला। श्रवण के मां-बाप उससे बोले कि जिस जंगल में दाड़ु के पेड़ होते हैं वहां का पानी कभी नहीं सूखता है, जिस जंगल में सेंऊरी वृक्ष तथा घोरल जानवर होता है उस जंगल में पानी की कमी नहीं होती है। अन्त में श्रवणकुमार को काजली बन में पानी का तालाब मिल गया, उसने अपने हाथ के कंगन तथा पांव धोये और पानी भरने लगा। दशरथ ने आवाज सुनकर शब्दभेदी बाण मार दिया, जब समीप आकर उसने अपने भानजे श्रवणकुमार को देखा तो उसे बहुत दु:ख हुआ उसने तो कोई चोर समझकर ही तीर चलाया

था। राजा दशरथ ने श्रवण को पीठ में लेकर पानी का लोटा हाथ में लेकर उसके माता-पिता के पास गया और बोला कि अम्मा और बापू पानी पी लो। श्रवण के माता-पिता दशरथ की आवाज को पहचान कर बोले कि 'तू हमारा बेटा नहीं है तू तो राजा दशरथ है, तूने अपने सगे भानजे को मारकर बहुत अन्याय किया है, अगर श्रवण जीवित है तो हमारे सामने लाओ, यदि मर गया है तो उसका अग्नि-संस्कार करो। राजा दशरथ ने चंदन की चिता पर श्रवणकुमार का दाह-संस्कार किया।

इस भान्ति पौराणिक कथानकों का स्थानीय सामाजिक मान्यताओं के अनुसार इस जनपद की लोक-गाथाओं में रूपायन हुआ है। श्रवणकुमार की गाथा को इस जनपद के लोग बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ सुनते हैं और श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

हिमाचल अकादमी द्वारा गेयटी थिएटर शिमला में डॉ० मीमदत्त काले जयन्ती के अवसर पर श्री राधारमण शास्त्री माननीय विधान सभा अध्यक्ष हि०प्र० अध्यक्षीय भाषण देते हुए। पीछे खड़े हैं प्रो० सोमपाल बट्टू और डॉ० बी.-आर. शर्मा।

कुल्लुवी भित्ति चित्रांकन में संस्कृति-तत्त्व

दयानन्द 'सरस्वती'

प्रत्येक भू-भाग अपनी जनपदीय लोक परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत को पूर्णतः सजोए हुए है। कुलूत क्षेत्र भी जनपदीय लोक परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत में मुख्य भूमिका निभाता है। यहां प्रत्येक तीज़, त्यौहार, व्रत, अनुष्ठान और सभी मांगलिक कार्यों में प्रत्येक घर, आंगन में विभिन्न प्रकार के मण्डप, धूप-अक्षत, कुंगु-केसर आदि के आकर्षक नमूनों से सम्पूर्ण वातावरण महक उठता है। विवाहोत्सव, जाप-पाठ एवं जन्मदिन आदि विशेष अनुष्ठानों पर आटे और पट्ठा (देवदार का पती पाऊडर) से विभिन्न आकारों में लोक समाज की चित्रित की गई भावना को भली-भांति जाना जा सकता है। इन औपचारिक विधि-विधानों के बिना शुभ कार्यों की पूर्णता नहीं मानी जाती। ये भित्ति लेखन एवं मांगलिक चित्रकारी शुभ और कल्याणकारी मानी जाती हैं। विवाहोत्सव की भित्ति लेखन एवं आंगन चित्रकला परम्परा में जहां नारी की कुशलता एवं कला जागरुकता प्रदर्शित होती है, वहां पुरुष निर्मित शुभ आनुष्ठिक कार्य की सजावट एवं कल्याण-भावना में उनकी सिद्ध हस्तता को नकारा नहीं जा सकता।

कुल्लुवी लोक समाज में मंगल-कार्यों के अवसर पर लिखित भित्ति-चित्रों में नारी के स्वतः जागृत भावों का रूपांकन हुआ है, इन भित्ति चित्रों को 'देऊथला' कहा जाता है। 'देऊथला' का शाब्दिक अर्थ देवता के 'थड़डे' से लिया जाता है। परन्तु उसी थड़डे पर देवता के अतिरिक्त सभी नवग्रह, षोडस मातृका चौंसठ जोगनियां एवं अन्य सभी मांगलिक अनुष्ठानों से सम्बद्ध वस्तुओं को रखा जाता है। यह लेखन घर के मूल-कक्ष के पूर्वी कोने की दोनों दीवारों पर समान रूप से लगभग दो-अढ़ाई फुट चौकोर रूप में बनाया जाता है। इसमें सीधी, तिर्यक् एवं वक्र रेखाओं का अधिक रेखांकन होता है, इसके अतिरिक्त उसमें फूल, पत्तियां, गोलाकार वृत्त, एवं अन्य सजावटों का मुख्य प्रावधान रहता है।

चित्रकला की परम्परा प्राचीन है। जिसके अन्तर्गत सभी गृह-चित्र, बिम्ब, मन्दिरों, महलों एवं दुर्गों की छत तथा दीवारों पर उकेरे गए सभी अपने प्राचीनतम स्वरूप दर्शाते हैं। कुल्लू के सभी प्राचीन मन्दिरों में भित्ति चित्रांकन का स्पष्ट रूप उपलब्ध होता है। मुख्यतः भित्ति-चित्र का रूप काष्ठ पर ही निखरा है, परन्तु कही-कहीं इनके पत्थर पर चित्रित नमूने भी मिलते हैं। नगर का ठहावा, जगत्सुख के प्राचीन मंदिर, शचैहणी में ऋषि शृंगा जी का मन्दिर शैंशर में मनु मन्दिर एवं बजौरा में प्रस्तर मन्दिर इस कला के विशिष्ट उदाहरण हैं। पुराने सामान्ती घरों में भी इसके छुट-पुट रूप दृष्टिगोचर होते हैं। इन कलाओं का प्रारम्भ स्त्रियों द्वारा निर्मित आंगन चित्रों से ही मान्य समझा जाता है। कालान्तर में इसके विभिन्न नमूनों में विकास होता गया। विकसित, प्रचारित एवं प्रसारित नमूने लोक समाज की कला के प्रति जागरुकता और उनकी धार्मिक भावना के जीवन्त उदाहरण हैं।

लोक समाज में द्वार-लेखन परम्परा भी आदिकालीन है। इस लेखन को कुल पुरोहित की पत्नी या पुत्र-वधू बनाती है। यह कार्य अपनी यजमानी के अन्तर्गत ही सम्पन्न किया जाता है। शुभ मुहूर्तनुसार कारज (उत्सव) की तिथि से दो-तीन दिन पूर्व पुरोहित पत्नी को बुलाकर द्वार लेखन का कार्य प्रारम्भ करता है। यह लेखन मुख्यत: 'पट्ठा' से सम्पूर्ण किया जाता है। 'देऊथलें' के वाह्य भाग में लाल रंग के विभिन्न आकार बनाए जाते हैं। 'कारज' सम्पन्न होने पर भी 'देऊथला' उसी प्रकार रखा जाता है, उसे नष्ट नहीं किया जाता। इसका बना रहना शुभ माना जाता है ।

मंगलकार्य एवं दीपावली आदि के शुभ उत्सवों पर भी द्वार की चौखट में इसी प्रकार की चित्रकारी की जाती है, इसमें लक्ष्मी के पांव, फूल-पत्तियां एवं त्रिभुजाकार, गोलाकार, चतुर्भुजाकार भी बनाए जाते हैं। फूल पत्तियां प्राकृतिक रंगों में भरी जाती हैं। चौखट के अतिरिक्त इसी प्रकार की चित्रकारी दरवाजे के दांए-बाएं एवं ऊपर के भाग में लगभग एक फुट में सुन्दर शैली में की जाती है। इस प्रकार की विशेष शैली के माध्यम से चित्रकारी अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक लगती है। पुरुषों द्वारा मण्डप की चित्रकारी आटे, रेत एवं कई प्रकार के मिश्रित रंगों से बनाई जाती है। व्रत, अनुष्ठानों के उद्यापनों में ओंकार, कलश एवं दीपक सहित सभी देवताओं की प्रतीक शैली में स्थापना होती है। नवग्रह के मण्डप में चार वेद, सताईस नक्षत्र बारह लगन, दस दिक्पालों की स्थापना भी होती है। इसी प्रकार की प्रतीक चित्रशैली विवाहोत्सव पर स्त्रियां 'जागरा-पूजणा' नामक क्रिया अनुष्ठान के अन्तर्गत करती हैं । आंगन में बहुत सारी लकड़ियों से जलाई आग को 'जागरा' कहते हैं। तीन या पांच औरतें पट्ण द्वारा प्रतीक चिह्न बनाते हुए गीत गाती हैं और जागरे की परिक्रमा करती हैं। इस शैली को 'स्वस्तिक चिह्न' शैली के रूप में जाना जाता है। इसमें चित्रित चिह्न स्वस्तिक आकार के होते हैं।

भित्ति चित्रांकन का कार्य अनुमानत: सानुपातिक होता है। दोनों दीवारों से बराबर भाग लेकर अंगुली से छोटी-छोटी लकीरें खैंचकर पूर्ण चित्रकारी की जाती है ताकि यह पूर्ण चित्रकारी प्रभावी बन सके। कुछ वर्षों पहले तो ईट पीस कर उसे उबाला जाता था, जिसे 'पराज़ण' कहा जाता है। धीरे-धीरे यह परम्परा अब रंगों की विभिन्न चित्रकारी बनती जा रही है। रंगों की स्थिरता एवं चमकीलेपन के लिए उसे दो-तीन दिन पूर्व ही गोंद आदि मिलाकर तैयार करके रखा जाता है।

राजमहलों, प्रासादों, भवनों एवं मन्दिरों में पाए जाने वाले भित्ति चित्रों में कलाकार की सूक्ष्म कला के दर्शन अनायास ही हो जाते हैं। कुल्लुवी लोक समाज के इन कलाकारों को 'थाती' कहा जाता है। ये एक विशेष जाति के लोग परम्पराओं में रहकर आज भी देवताओं की पालकी एवं मन्दिर में लगे काष्ठ को उकेरते हैं। प्रासादों एवं मन्दिरों में चितरों की सुन्दर नकाशी दृष्टिगोचर होती हैं। मन्दिर के मुख्यद्वार पर दाईं एवं बाईं दोनों ओर लम्बे-लम्बे नागों की नकाशी हुई है। दरवाजे, खिड़की और तोरण पर भी घोड़े हाथी, शेर, हिरण, गाय, बैल, कबूतर, नृत्य-वेश में स्त्री-पुरुष, गुलस्ते, कुंभ, कलश आदि के चित्र बनाए हुए हैं। कहीं-कहीं नकाशी में योग-सम्बन्धी विभिन्न मुद्राओं को भी दर्शाया गया है।

मन्दिरों की दीवारों के दोनों ओर बनी चित्रकारी के लिए निर्धारित पट्टिका बनाई जाती है और उसके आन्तरिक भाग में पतली छैनी से गूढ़ एवं सूक्ष्म नकाशी की जाती है। चित्र की तीखी धारों को रगड़कर मुलायम और सुन्दर बनाया जाता है। 'बनौरा' के शिला मन्दिर में पत्थर पर लक्ष्मी, सरस्वती एवं भैरों आदि

(शेष पृ० ७१ पर देखें)

संस्कृत और संस्कृत पत्रकारिता

पृथुराम शास्त्री

अपने पास-पड़ोस और देश-विदेश के समाचारों की जिज्ञासा मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसकी पूर्ति के लिए मानव ने जिन अन्यान्य साधनों को अपनाया है उसमें समाचार पत्र भी एक प्रमुख साधन है।

समाचार-परिभाषा नित नये समाचारों को लिखित रूप से या मुद्रित हो कर मानव समाज तक पहुंचने वाले कागज़ को समाचार पत्र कहा जाता है। समाचार पत्र की कला पर विचार करने वाले विभिन्न चिन्तकों ने इसकी परिभाषाएं दी हैं। उनकी शब्दावली पृथक होने पर भी कथ्य सभी का एकही है — जैसे:-

1. सत्य घटना, विचार विवरणादि को जिनमें पाठकों की अभिरूचि हो,
2. उन महत्वपूर्ण घटनाओं की जिनमें पाठक की अभिरुचि हो, की प्रथम रिपोर्ट को और . . .
3. किसी भी समय घटित होने वाली उन महत्वपूर्ण घटनाओं के सही और पक्षपात रहित विवरण जिसमें पाठकों की अभिरूचि हो और जो प्रकाशित कर जनसाधारण तक पहुंचता है वह समाचार पत्र है।

प्रयोजन राष्ट्रनिष्ठा, ज्ञान-प्राप्ति पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति। सामाजिक चेतना को जगाना, धार्मिकता का विकास, एकता, भाषा-संस्कृति-व्यवहार आदि का ज्ञान, मौलिक एवं अप्रकाशित साहित्य का प्रकाशन यश-धन आदि को प्राप्ति ही इसके प्रयोजन है।

अंगोपांग समाचार पत्र के क्षेत्र (पाठकों), समाचार स्रोत, सम्वाददाता, सम्पादक, मुद्रण विवरणादि अनेक अंगोपांग हैं। इन सभी पर आगे विचार किया जाएगा। उक्त विविध अंगोपांगो का समन्वय और समायोजन सुव्यवस्थित प्रकार से कर पाना ही पत्रकारिता है। यद्यपि यह विषय अपने आप में अति विस्तृत है तथापि अपेक्षित रूप से इस पर विचार किया जा रहा है।

क्षेत्र (पाठक) हिम-करीट-मण्डित-भाल देवतात्मा हिमालय की गोद में बसा यह हिमाचल प्रदेश आदिकाल से लेकर ही देवताओं का विहार स्थल और ऋषि मुनियों की तपोभूमि रहा है। नदी प्रवाह के समान स्वर्गान्पवर्गास्पद हेतु इसी प्रदेश से प्रसूत धार्मिक एवं सांस्कृतिक धारा ने सतत् रूप से विश्वभर के मानवमात्र को स्थापित किया और सन्मार्गगामी बनाया है।

सर्वसम्मत तथ्य है कि भगवान व्यास ने यहीं रहकर तप किया और तपोजन्य प्रतिभा से महाभारत जैसे ऐतिहासिक एवं पुराणों सरीखे धार्मिक वाङ्मय का सूत्रपात किया था। दक्ष, यज्ञादि प्रजापतियों

द्वारा सृष्टि का समारम्भ भी यहीं पर हुआ था। परम प्रसिद्ध दक्षयज्ञ का कांगड़ा में तथा उसकी पुनः पूर्ति ज्वालामुखी में हुई थी। ब्रह्मर्षि बनने की ललक लिए राजा विश्वामित्र ने यहीं रह कर तप द्वारा गुरु मंत्र गायत्री का साक्षात्कार भी किया था। माण्डव्य ऋषि मण्डी नगर से तो लोमश ऋषि रिवालसर से जुड़े रहे हैं। दक्षयज्ञ ध्वांसिनी भगवती वज्रेश्वरी तथा चण्डमुण्ड विनाशिनी भगवती चण्डी का प्रादुर्भाव भी यहीं हुआ था। महर्षि जमदग्नि और उनक पुत्र परशुराम भी सिरमौर, शिमला और कुल्लू से सम्बद्ध रहे हैं। माता रेणुका की प्रतीक रेणुका झील तो सिरमौर की शोभा हैं।

इस ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रदेश की बोलचाल की भाषा संस्कृत ही रही है क्योंकि उक्त वाड़मय के रचनाकार यही रहते रहे हैं। महावैयाकरण आचार्य पाणिनि ने भी अपनी रचना में इस प्रदेश की पृथक् उच्चारण शैली को स्वीकार किया है। वस्तुतः यंह प्रदेश और इसकी पुरातन संस्कृति भी अत्यन्त ही समृद्ध थे। हिमाचल प्रदेश की संस्कृति के कुछ बिखरे सूत्र ध्यान में आए हैं। उनके अनुसार जरा समृद्धि का एक उदाहरण तो देखिये —

महाभारत, अश्वमेघ पर्व, 4–10, वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड 18, विष्णुपुराण, 4–1–16–17, भागवत् पुराण, 9–1–26–27 और जालन्धर पीठ माहात्म्य, 5, 38 पर अवीक्षित पुत्र और उसके यज्ञ का वर्णन उपलब्ध है। वह यज्ञ इतना समद्ध था कि "न भूतो न भविष्यति" ही कहा जा सकता है। उसमें यज्ञभागी ब्राहमण वर्ग को खान-पान के लिए प्रतिदिन सोने के नित्य नये बर्तन दिये जाते थे और जूठे बर्तनों को त्याज्य समझ कर फैंक दिया जाता था। जिससे इन जूठे बर्तनों का एक पहाड़ ही बन गया था। महाभारत के युद्ध के उपरान्त भगवान व्यास ने उसी स्वर्णगिरि से अपने कोष को भरने और उससे अश्वमेघ यज्ञ करने का आदेश महाराज युधिष्ठिर को दिया था। उक्त मूरत यज्ञ का सम्पादन वैद्यनाथ मन्दिर से पूर्व दिशा की चौबू-चबीन और बाहीनाग के आसपास ही कहीं हुआ था। आज भी लोक चर्चा है कि यहां सोने के बर्तन मिलते हैं[1] स्वर्णाभूषणों और मुद्राओं का मिलना तो सम्भव है किन्तु स्वर्णपात्रों का मिलना यही सिद्ध करता है कि उक्त परम समृद्ध यज्ञ इसी प्रदेश में सम्पन्न हुआ था तथा कालान्तर में मिलने वाले पात्र उसी यज्ञ के उच्छिष्ट पात्र थे। इस तथ्य की पुष्टि के लिए धातुशोधकों द्वारा इस क्षेत्र का सर्वेक्षण अपेक्षित है। जिससे सही जानकारी प्राप्त हो सके। यदि यह सिद्ध हो जाता है तब भगवान् विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारण कर भस्मासुर का त्रिलोकनाथ में संहार करना, कांगड़ा के स्थान पर जालन्धर और शिवजी का युद्ध तथा वृन्दावन में जालन्धर असुर-पत्नी वृन्दा का सती होना भी स्वतः सिद्ध है।

उत्सृष्टं ब्राहम्णैर्यज्ञे मरुतस्य महात्मनः।
तदानयस्व कौन्तेय पर्याप्तं तदभविर्ष्यत।।
विद्यते द्रविणं पार्थ गिरौ हिमवति स्थितम्।[2]

इसी प्रकार रावण द्वारा अपने सिर काट कर उनकी आहुतियां दिया जाने वाला यज्ञ भी बैद्यनाथ की चिताभूमि और परली-स्थान पर बताया गया है।इस समय बैद्यनाथ नामक तीन स्थान हैं।

(1) बिहार प्रदेश में (2) अलमोड़ा-कुमाऊं के आसपास और (3) कांगड़ा में। अब विचारणीय यह है कि वह बैद्यनाथ भी उनमें जहां रावण ने अपने सिर काट कर चढ़ाये थे, कौन सा है। आसाम के

अनुसन्धानकर्ता ऋषि जैमिनि कौशिक बरुआ का शोध विषय है — **द्वादश ज्योतिर्लिंग**। बैद्यनाथ भी उनमें से एक हैं। उक्त शोधकर्ता बैद्यनाथ (कांगड़ा) की शोध-यात्रा के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि बिहार एवं उत्तर प्रदेश के बैद्यनाथ रावण की साधना स्थली नहीं हो सकते क्योंकि वहां से हिमालय के दर्शन नहीं हो पाते। कांगड़ा का बैद्यनाथ हिमालय में ही स्थित है। नीचे की ओर साथ ही, विनोदा नदी के तट पर क्षीर गंगा के आस-पास चिता भूमि भी विद्यमान है। अब रही परली नामक स्थान की खोज। सम्भव है कि कभी इस स्थान का या इसके उस पार के स्थान का नाम परली रहा है। पुनः बैद्यनाथ नाम के प्रसिद्ध होने पर वह जनमानस से ओझल हो गया हो। लोक चर्चा भी बैद्यनाथ के साथ रावण के सम्बन्ध को पुष्ट करती है। यहां एक शिला पर रावण के चरण चिन्ह भी अंकितः बताए जाते हैं।

उक्त यथातथ प्रसंगों से यही सिद्ध होता है कि यह हिमाचल प्रदेश ही संस्कृत वाङ्मय; यज्ञानुष्ठानों, ग्रन्थ-रचनाओं, उनके संकलन एवं संरक्षण सम्पादन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उक्त सभी आयोजनों का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी और आज भी यज्ञानुष्ठानों का माध्यम यही भाषा है।

आज भी प्रदेश की सभी विभाषाओं में 50 प्रतिशत शब्द संस्कृत के तत्सम शब्द हैं और 30 प्रतिशत उसी के तद्भव। हिमालय क्षेत्र की जनजातीय भाषाओं के मर्मज्ञ डॉ. देवीदत्त शर्मा ने भाषायी सर्वेक्षण के अन्तर्गत लाहुल-स्पिति में प्रचलित चनाली बोली का अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि चनाली बोली में न केवल शब्दावली अपितु वाक्य और वाक्य विन्यास प्रक्रिया भी पूर्णतया संस्कृतनिष्ठ एवं यथातथ्य रूप में संस्कृत ही है। जनजातीय भाषा और संस्कृत के सामन्जस्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:-

हिन्दी	जनजातीय भाषा	संस्कृत
1. ठण्ड में बाहर मत जाओ।	शीते बहिरां मा गच्छ।	शीते बहिर्मा गच्छ।
2. मेरे सफेद कपड़े मुझे दे दो।	मे शुकलं बधुरं मे देहि।	मे शुक्लं वस्त्रं मह्यं देहि।
3. मुझे पसीना नहीं आता।	मू प्रस्वेदः न आईदित्।	मां प्रस्वेदः न आयाति।
4. मेरी चान्दी की अंगूठी टूट गई।	मे रोपेर आंङठी त्रुटि गई।	मे रौप्यस्य अंगुष्ठिका तुटितं गता।

उक्त उदाहरणों को देखकर कोई संशय मन में नहीं रहता कि हिमाचल में संस्कृत पत्रकारिता की संभावनाएं है या नहीं ? जिस क्षेत्र में जनसाधारण द्वारा बोली जाने वाली भाषा आज भी संस्कृत बहुल है वह क्षेत्र संस्कृत पत्रकारिता के अनुकूल क्यों नहीं हो सकता किन्तु वस्तुतः ऐसा है नहीं। दास मानसिकता का ही एक परिणाम है कि संस्कृत भाषा का अध्ययन करने वाले छात्र वर्ग की संख्या क्रमशः क्षीण होती जा रही है। संस्कृत की बात तो दूर रही, हिन्दी, जो राष्ट्रीय गौरव की प्रतीक है, वह गत तैंतालीस वर्षों के युगान्तराल में भी जनसाधारण को न मिल पाई। संस्कृत विरोधी यह भी घोषणा करते हैं कि संस्कृत तो मृतभाषा है। इस कम्पयूटरीकरण के युग में कम्पयूटर विशेषज्ञों ने कम्पयूटर के लिए सभी भाषाओं की जब परख की तो पाया कि कम्पयूटर के लिए संस्कृत ही एकमात्र उपयुक्ततम भाषा है। क्या विज्ञान सम्मत संस्कृत को मृतभाषा कहने वालों के मुंह पर यह करारी चपत नहीं है ? विश्वविद्यालय, और कॉलेज स्तरीय संस्कृत पाठ्यक्रमों में भी पर्याप्त विसंगतियाँ विद्यमान हैं। और

संस्कृत की विभिन्न विधाओं को पढ़ाने वाले योग्य अध्यापकों का भी पर्याप्त अभाव है। अंग्रेज़ी के प्रति मोह के कारण संस्कृत के पारम्परिक अध्ययन में भी अंग्रेज़ी विषयों को लादने की मानसिकता संस्कृत के छात्रों के लिए कठिनता उत्पन्न कर रही है। प्रकारान्तर से अब संस्कृत के अध्ययन के लिए भी अंग्रेज़ी पढ़ना आवश्यक बना दिया गया है। एक ओर संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम वैज्ञानिक, कम्प्यूटर के लिए अत्यन्त उपयोगी और सर्वविध साहित्य से परिपूर्ण है दूसरी ओर अंग्रेज़ी के बिना इसे पंगु बना दिए जाने की बात प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए कौन सा उत्तरदायित्व वहन कर रही है ? यह विचारणीय है।

हिमाचल वासियों का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त संस्कृत द्वारा ही अनुप्राणित नहीं रहता अपितु मरणोपरान्त प्रेत क्रिया एवं श्राद्धादि सारी पितृ क्रियाएं संस्कृत के माध्यम से ही सम्पन्न हो पाती हैं। फिर भी त्रिभाषा सूत्र के आधार पर तृतीय भाषा के रूप में संस्कृत को न अपना कर नई पीढ़ी के गले में उर्दू को डाल रखा है। जबकि दो वर्षों के इस शिक्षण द्वारा बालकों को उर्दू की वर्णमाला का भी ज्ञान नहीं हो पाता। मैट्रिक पास कोई भी छात्र सदा उर्दू से अनभिज्ञ रह जाता है और उर्दू के स्थान पर संस्कृत पढ़ाने का अधिकार तो उसे प्राप्त ही नहीं हो पाता। इस स्थिति में भी उर्दू को जारी रखने में भला क्या तुक है ?

समाधान (1) माध्यमिक शिक्षा को प्रथम और क्रमशः छठी श्रेणी से तृतीय भाषा के स्थान पर संस्कृत को अनिवार्य विषय बनाया जाए और हिन्दी के पत्र में जो 30 अंकों की संस्कृत निर्धारित की गई है उसे वहां से निकाल दिया जाए। (2) उच्चतर माध्यमिक श्रेणियों में भी संस्कृत शिक्षण को यथावत रखा जाए।

(3) विद्यालय स्तर पर संस्कृत शिक्षण की दो पद्धतियां विकसित की गई हैं। उनमें से एक है परम्परागत ढंग से शिक्षा पा कर शास्त्री एवं आचार्य परीक्षा पास करना और दूसरी है कॉलेजों के अन्दर आधुनिक ढंग से संस्कृत विषय को लेकर उपाधि परीक्षा पास करना। प्रथम पद्धति द्वारा अपेक्षाकृत भाषागत गाम्भीर्य तो सम्पन्न हो जाता है किन्तु विष्यगत गाम्भीर्य नहीं हो पाता और दूसरी पद्धति द्वारा विषयगत गाम्भीर्य ही किंचित्मात्र होता है, भाषागत नहीं। उक्त दोनों पद्धतियों को मिलाकर सभी के लिए एक नयी पद्धति विकसित की जानी चाहिए। इसके द्वारा संस्कृतज्ञ केवल मात्र शिक्षा विभाग को ही ताकते न रहेंगे अपितु अन्यान्य क्षेत्रों में भी खप सकेंगे, संस्कृत भी रोज़गार से जुड़ जाएगी। इस प्रकार संस्कृत को जीवित रखने के लिए इसे आजीविका के साथ जोड़ना अत्यन्तावश्यक एवं समय की मांग बन गया है। दूर देशान्तर से आई उर्दू फ़ारसी और इंग्लिश ने इसी आधार पर विकास पाया है, ऐसा करने पर हिमाचल में भी संस्कृत पत्रकारिता के लिए एक नया क्षेत्र विकसित हो पाएगा और इसके अंग्रेज़ी पत्रकारिता के समान सभी अंगोपांग स्वतः विकसित होते जायेंगे।

समाचार स्रोत समाचारों के प्रमुख स्रोत सरकार का सूचना कानून जनसम्पर्क कार्यालय आदि हैं। उनके द्वारा सरकार की शिक्षानीति, उद्योगनीति, क़ानून आदि कई योजनाओं के समाचार सुलभ होते हैं। इसके अतिरिक्त हाट बाट, चौक चबूतरे, मेले-महोत्सव, राजनेता और उनसे लिये गये साक्षात्कार एवं समाचार संस्थाएं भी समाचारों के स्रोत हैं।

समाचार सम्वाददाता सम्वाददाता के लिए लोक रुचि का जानकार होना आवश्यक है। वह अतिरंजित समाचार न भेजकर वास्तविक समाचार भेजने वाला, प्रत्यक्ष रपट, बात से बात से निकालने वाला, प्रत्युत्पन्नमति, मनोवैज्ञानिक के समान आकृति को देखकर दिल की टोह लेने वाला, समाचारों का मूल्यांकन करने में सक्षम, निकटता का पारखी और समाचारों की अनुकूल कांट-छांट करने में सक्षम हो। उक्त गुणान्वित सम्वाददाता आकाश-पाताल से लेकर अन्त:स्थल के गूढ़तम रहस्यों को भी उगलवाने में समर्थ होता है और कर्तव्य परायणता की दृष्टि से युद्धाग्नि की भड़कती लपटों से भी समाचार निकाल पाता है।

सम्पादक:– समाचार पत्र की सफलता सम्पादक के बुद्धिकौशल पर निर्भर करती है। उसे पत्र की निर्धारित नीति से इधर-उधर न जाने वाला, सम्पादकीय द्वारा जनमत को प्रभावित करने में समर्थ, मानवीय मूल्यों की झलक, राष्ट्रहितैषी और समाज का पथ प्रदर्शक होना चाहिए। वह प्रेस अधिनियम 1857, इण्डियन पैनल कोड संशोधन 1857 रेगुलेशन आफ प्रिंटिंग प्रैस एण्ड न्यूज पेपर एक्ट 1867 आदि सम्बन्धित अधिनियमों एवं विधिविधानों का जानकार भी हो, ताकि वह और उसका पथ, दोनों कानून की पकड़ से बच सकें। भाषा का भी वह मर्मज्ञ हो जिससे कि वह अपनी बात कहता हुआ भी कानून की पकड़ से मुक्त रहे और जन समुदाय को सुपथ की ओर आकर्षित कर सके।

मुद्रण:– समाचार पत्र का मुद्रण आकर्षक, सुस्पष्ट, चित्रमय आदि विशेषताओं से भरपूर हो जिनसे प्रभावित हो कर पाठक पत्र की और खिंचता चला आये।

विवरण:– तात्कालिक विवरण ही पाठकों की अपेक्षाओं की पूर्ति करता है। विलम्बित विवरण तो पत्र को ही ले डूबता है।

समाचार पत्रों के प्रकार:– समाचार पत्रों के सामाजिक, राजनैतिक, वित्तीय, धार्मिक, साहित्यिक, चित्रपटीय आदि अनेक प्रकार हैं। अधिसंख्यक पत्र एकाधिक विषयों को समाहित करके चलते हैं ताकि वे विभिन्न वर्गीय लोगों तक पहुंच सकें। समय-समय पर 'विशेषांक' निकालना भी लोक-प्रियता का माध्यम है।

समयावधि:– समाचार पत्रों की समयावधि भी समान नहीं होती। वे दैनिक, सान्ध्य, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक आदि अनेक रूपों में प्रकाशित होते हैं।

अन्ततः हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि समाचार को अधिकाधिक संख्या में पाठक सुलभ हों तो समाचार पत्र की सफल आपूर्ति स्वत: ही हो जाती है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या उत्तरोत्तर ह्रास की ओर उन्मुख है। इसके कारणों को हम जान लें तो इस ह्रास की गति को बान्ध सकते हैं। तो आईये इसी पर विचार कर लें।

संस्कृत के ह्रास के कारण:- (1) हिन्दु समाज के सभी ब्राहमणेतर यह समझते हैं और कहते भी हैं कि संस्कृत तो पण्डितों की भाषा है हमने इसे पढ़ कर क्या करना है? इस चिन्तन ने इस भाषा को ब्राहणवर्ग के साथ ही बावस्ता कर दिया है और बहुसंख्यक ब्राहण वर्ग का संस्कृत ज्ञान भी केवल

मात्र पंचांग बाचने तक ही सीमित है। उसने संस्कृत ज्ञान के दम्भ को आजीविका का साधन बना लिया है, ज्ञान का नहीं। वह संस्कारों के सम्पादन मात्र में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान बैठा है। वह युग की दौड़ में भी पिछड़ गया है और उसमें समसामयिक प्रखरता एवं जागरुकता का प्राय: अभाव है।

(2) संस्कृत भाषा प्राय: रोजगार से टूट चुकी है। शिक्षित संस्कृतज्ञ रोजगार की तलाश में भटक रहा है। ज्ञानार्जन को छोड़ कर उसे अशिक्षित व्यक्ति के समान कई श्रमसाध्य धन्धों में जुटना पड़ रहा है। इस भटकन को देख कर कोई भी व्यक्ति अपनी सन्तान को संस्कृत पढ़ाने का साहस नहीं जुटा पाता। स्वयं संस्कृतज्ञ भी तो यही कर रहे हैं।

(3) आध्यात्मिकता एवं अध्यात्मनिष्ठ संस्कृति तो अब बीते युग की बातें हो गई हैं। पश्चिम की देन से जीवन के मान दण्ड बदल गये हैं। भौतिकवादी दृष्टिकोण ने अध्यात्म चिन्तन को केवल शास्त्रों का विषय बना दिया है और संस्कृति बन गई है-डिस्को डांस।

(4) छोटे से लेकर बड़े अधिकारी और राजनेता सभी सार्वजनिक सभाओं एवं पत्रकार सम्मेलनों में संस्कृत का गुणगान करके लोकप्रियता तो प्राप्त कर लेते हैं किन्तु उसके लिए करते-धरते कुछ नहीं। इस प्रकार संस्कृत-प्रियता को अपने स्वार्थों का साधन बनाया जा रहा है।

(5) हमारे राष्ट्र की शिक्षानीति चालीस वर्षों के युगान्तराल में प्रयोग की भट्ठी में ही भुन रही है। उधार लिया एक प्रयोग जब असफल सिद्ध हो जाता है तो दूसरा उधार मांग लिया जाता है। उसमें राष्ट्रगौरव, राष्ट्र की अपेक्षाओं, उपलब्ध सुविधाओं का तनिक भी चिन्तन नहीं होता — संस्कृत चिन्तन तो दूर की बात है। इसी का परिणाम है कि नयी शिक्षानीति में भी संस्कृत अपना स्थान न बना पाई।

समाधान – ऊपरवर्णित कारणों के परिहार से ही संस्कृत के प्रचार-प्रसार की सम्भावना हो सकती है यथा:—

1. त्रिभाषा सूत्र के अनुसार माध्यमिक स्तर पर उर्दू के स्थान पर छठी श्रेणी से ही संस्कृत को अनिवार्य विषय बनाना।
2. विद्यालय स्तर पर प्रचलित दोनों पद्धतियों को गुणों के आधार पर समाहित कर एक नयी पद्धति का विकास करना जिसमें हिन्दी-अंग्रेज़ी दोनों भाषाएं भी अनिवार्य हों। संस्कृत की इस नव विकसित पद्धति द्वारा शिक्षित व्यक्ति शिक्षा क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी खप सकेंगे और भाषा भी रोजगार से जुड़ जाएगी।
3. हिन्दी अध्यापन के लिए शास्त्री परीक्षा पास व्यक्ति को भी सक्षम मान कर एतदर्थ उसे अधिकृत करके हिन्दी अध्यापक के पद पर नियुक्त करना।
4. पिछड़ी भाषा के नाते संस्कृत शिक्षण के लए वित्तीय सहायता देना तथा पिछड़े वर्गों के समान सेवाक्षेत्र में संस्कृतज्ञों को विशेष संरक्षण देना।

5. संस्कृत भाषा में भाषण प्रतियोगिताओं, संस्कृत सम्मेलनों, संस्कृत गोष्ठियों का आयोजन करना, जिससे जन साधारण में भी इस भाषा के प्रति रुचि एवं उत्साह पैदा हो। ऐसा करने पर ही संस्कृत पत्रकारिता के लिए उपयुक्त क्षेत्र बन सकता है।

प्रथम संस्कृत पत्रिका— पुनर्जागृति के युग, उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग के पूर्व ही सम्पूर्ण भारत में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। उन्हें देखकर संस्कृत विद्वानों ने भी अपनी भावनाओं को प्रकाशित करने के लिए, नूतन साहित्य से अवगत कराने के लिए, धार्मिक भावना को सबल बनाने के लिए और संस्कृति के गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का माध्यम अपनाया।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के विकास के समय से ही संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक पत्र-पत्रिकाएं संस्कृत मिश्रित थीं। संस्कृत के अनेक श्लोकों का प्रकाशन उनमें होता था। हिन्दी का पहला पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' है, जिसको देखने से ज्ञात होता है कि इस पत्र के सम्पादक जुगल किशोर शुक्ल संस्कृत के विद्वान् थे। अनेक स्वरचित श्लोक इसमें प्रकाशित किये जाते थे। पत्र का नाम भी संस्कृत में था। इसी प्रकार और भी अनेक पत्र-पत्रिकाएं थीं, परन्तु संस्कृत क्षेत्र से शुद्ध संस्कृत मासिक पत्र प्रथम जून, 1966 को बनारस से 'काशीविद्यासुधानिधिः' नाम से प्रकाशित हुआ। प्राप्त सामग्री के अनुसार 'काशी विद्यासुधानिधिः' ही संस्कृत का पहला पत्र है। यह पत्र राजकीय संस्कृत विद्यालय काशी से प्रकाशित होता था तथा सन् 1876 तक इसकी प्रकाशित प्रतियां प्राचीन संचिकाएं और सन् 1888 से सन् 1917 तक की प्रकाशित प्रतियां नूतन संचिकाएं कहलाई। यह पत्र मई सन् 1917 को बन्द हो गया। इस पत्र का दूसरा नाम 'पण्डित' था। इसमें अर्वाचीन और प्राचीन संस्कृत वाङ्मय प्रकाशित हुआ। इसके बाद सतत अनेक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। संस्कृत पत्रकारिता सदा साहस पर निर्भर रही है। आत्मत्याग और अयाचित सेवा का सच्चा उदाहरण इसमें मिलता है। अधिक तो नहीं पर संस्कृत पत्रकार अपने पत्र विद्वानों में बांट कर उनकी प्रशंसा पर भी न्यौछावर हो सुरवाणी की सेवा करता है। पत्र वे ही अच्छे निकलते हैं जो आत्मबल पर निकलें। शासकीय सहारा पा कर वे बोझिल बन जाते हैं।

इस प्रकार संस्कृत के पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का जीवन सदैव त्यागमय और आदर्श से परिपूर्ण रहा है। अनेक ऐसे सम्पादक हुए हैं जो आजीवन अनेक बाधाओं के रहने पर भी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से विमुख नहीं हुए। अतः पत्रकारिता आत्मबल पर निर्भर प्रतीत होती है। इसी लिए यह प्रवाह अनवरत चल रहा है और आज देश में प्रकाशित होने वाले संस्कृत पत्रों की संख्या लगभग दो सौ है।

काल-क्रमानुसार संस्कृत और संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं का विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।:—

क्र.सं.	प्रकाशन वर्ष	पत्र/पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल	क्र.सं.	प्रकाशसन वर्ष	पत्र/पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल
1.	1866	काशी विद्यासुधानिधिः	वाराणसी	3.	1867	धर्म प्रकाशः	आगरा
2.	1867	प्रत्नकम्रनन्दिनी	,,	4.	1871	विद्योदयः	लाहौर

क्र.सं.	प्रकाशसन वर्ष	पत्र/पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल
5.	1875	सद्धर्मामृतवर्षिणी	आगरा
6.	1875	प्रयाग धर्मप्रकाश:	प्रयाग
7.	1875	षड्दर्शनचिन्तनिका	पूना
8.	1878	विद्यार्थी	पटना
9.	1878	काव्येतिहाससंग्रह:	पूना
10.	1978	आर्षविद्यासुधानिधि:	कलकत्ता
11.	1879	कामधेनु:	वाराणसी
12.1	1880	धर्मनीतितत्त्वम्	पटना
13.	1882	काव्यनाटकादर्श:	धारवाड़
14.	1882	आर्य:	लाहौर
15.	1883	धर्मोपदेश:	बरेली
16.	1883	विज्ञानचिन्तामणि:	पट्टाम्बि
17.	1885	ब्रह्मविद्या	नांदुकावेरी
18.	1886	श्रुतिप्रकाशिका	कलकत्ता
19.	1887	आयुर्वेदोद्धारक:	मथुरा
20.	1887	लोकानन्द दीपिका	मद्रास
21.	1887	आर्यसिद्धान्त:	इलाहाबाद
22.	1887	छैमाषिका	जैसोर
23.	1887	ग्रंथरत्नमाला	बम्बई
24.	1888	विद्यामर्तण्ड:	प्रयाग
25.	1889	उषा	कलकत्ता
26.	1890	पीयूष-वर्षिणी	फर्रुखाबाद
27.	1891	अरुणोदया	कलकत्ता
28.	1892	मानवधर्म प्रकाश:	,,
29.	1893	सकल विद्याविवर्धिनी	विजयापटनम्
30.	1893	संस्कृत चन्द्रिका	कोहलापुर
31.	—	काव्याम्बुधि:	बैंगलोर
32.	1893	श्रीपुष्टिमार्गप्रकाश:	बम्बई
33.	1895	आर्यावर्तत्रवणरिधि:	कलकत्ता
34.	1895	संस्कृत टीचर	गिरगांव
35.	1895	कवि	पूना
36.	1895	प्रयागपत्रिका	प्रयाग
37.	1895	प्रयाग सहृदया	मद्रास
38.	1896	श्रीवेंक्टेश्वर पत्रिका	,,
39.	1896	काव्य कादम्बिनी	लश्कर
40.	1896	संस्कृत पत्रिका	पादुकोटा
41.	1897	काव्यकल्पद्रुम	बैंगलोर

क्र.प्र.	प्रकाशसन वर्ष	पत्र/पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल
42.	1897	भारतोपदेशक:	मेरठ
43.	1898	काव्यमाला	बम्बई
44.	1893	पण्डित पत्रिका	वाराणसी
45.	1899	चिकित्सासोपानम्	कलकत्ता
46.	1894	साहित्य रत्नावली	पट्टाम्बि
47.	1894	शास्त्रमुक्तावली	कांची
48.	1900	कथा कला द्रुम:	कोल्हापुर
49.	1900	मुंजभाषिणी	कांचीवरम्
50.	—	समस्यापूर्ति:	कोल्हापुर
51.	1900	विद्वत्कला	कट्टर (केरल)
52.	1900	देवगोष्ठी	—
53.	—	विद्यार्थिचिन्तामणि:	—

बीसवीं शताब्दी

क्र.प्र.	प्रकाशसन वर्ष	पत्र/पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल
54.	1901	ग्रंथ प्रदर्शिनी	मद्रास
55.	1901	श्री काशी पत्रिका	काशी
56.	1902	भारतधर्म:	चिदम्बरम्
57.	1902	ब्रह्मविद्या	,,
58.	1902	विचक्षणा	पेरटुम्बुर
59.	1902	रसिकरंजिनी	कोटिलिंगपुरम्
60	1903	सूक्ति सुधा	वाराणसी
61.	1903	वैष्णव सन्दर्भ:	वृन्दावन
62.	1904	संस्कृत रत्नाकर:	जयपुर
	1904	मित्रगोष्ठी	वाराणसी
63.	1903	मिथिलामोद:	बिहार
64.	1903	विद्वद्गोष्ठी	काशी
65.	1903	विशिष्टाद्वैतिनी	श्रीरंगम्
66.	1906	केरल ग्रंथमाला	मालावार
67.	,,	विद्याविनोदा	भरतपुर
68.	,,	सद्धर्म:	मथुरा
69.	,,	सहृदया	त्रिचनापल्ली
70.	,,	सन्टतवादिनी	कोल्हापुर
71.	,,	विश्वाश्रित:	मद्रास
72.	,,	वीरशैव प्रभाकर:	,,
73.	,,	विद्यावती	,,
74.	,,	मनोरंजिनी	,,
75.	,,	वीरशैवमत प्रकाश:	पूना
76.	,,	भारत द्विवाकर:	अहमदाबाद

क्र.सं	प्रकाशसन	पत्र/पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल	क्र.सं.	प्रकाशसन	पत्र/पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल
77.	1907	जयन्ती	केरल	113.	"	उद्योत:	लाहौर
78.	1907	विद्वन्मनोरंजिनी	कांचीवरम्	114.	1930	भारतसुधा	पूना
79.	1907	षड्दर्शिनी	श्रीरंगम्	115.	1931	पीयूष पत्रिका	नडियाद
80.	1907	आर्यप्रभा	कलकत्ता	116.	1933	श्री:	श्रीनगर
81.	1909	पुरुषार्थ:	नरगुंद	117.	1934	संस्कृत साप्ताहिक पत्रिका	धुलजोड़ा
82.	1910	साहित्यसरोवर:	काशी	118.	"	देववाणी	कलकत्ता
83.	1910	विद्यारत्नाकर:	"	119.	"	अमरभारती	वाराणसी
84.	1910	अमरभारती	केरल	120.	"	उषा	लाहौर
85.	1910	हिन्दुजनसंस्कारिणी	मद्रास	121.	"	संस्कृत पद्यवाणी	कलकत्ता
86.	1912	आयुर्वेद पत्रिका	दिल्ली	122.	1935	मधुरवाणी	बेलगांव
87.	1913	आयुर्वेद पत्रिका	हरिद्वार	123.	"	वल्लरी	वाराणसी
88.	"	उषा	हरिद्वार	124.	"	मंजूषा	कलकत्ता
89.	"	शारदा	इलाहाबाद	125.	1936	दिवाकर:	कलकत्ता
90.	1914	बहुश्रुतम्	वर्धा	126.	"	कालिन्दी	आगरा
91.	"	व्याकरणग्रंथावली	तंजौर	127.	"	मीमेरार व्रकेरयर:	पूना
92.	1916	गीर्वाणभारती	अहमदाबाद	128.	"	ब्रह्मविद्या	मद्रास
93.	1918	संस्कृत भारती	वाराणसी	129.	1937	ग्वालियरग्रंथमाला	ग्वालियर
94.	"	मित्रम्	पटना	130.	"	भारतविद्या	बम्बई
95.	"	संस्कृतसाहित्यपत्रिका	कलकत्ता	131.	1938	शारदा	वाराणसी
96.	1919	संस्कृत महामण्डल	"	132.	1939	ज्योतिष्मती	"
97.	"	जिनमत प्रकाशिका	मैसूर	133.	"	शंकरगुरुकुलम्	श्री रंगम्
98.	1920	संस्कृत साकेत:	अयोध्या	134.	1940	संस्कृत संजीवनम्	पटना
99.	"	सरस्वती भवन-ग्रंथमाला	वाराणसी	135.	"	संस्कृत-सन्देश:	वाराणसी
				136.	"	भारतश्री	"
100.	"	सरस्वती भवनानु शीलनम्	"	137.	1941	उच्छृंखलम्	"
101.	"	संस्कृतम्	आयोध्या	138.	"	अमृतवाणी	बंगलौर
102.	1923	सरस्वती	मुक्त्याला	139.	1942	सरस्वती सुषमा	वाराणसी
103.	1923	सुप्रभातम्	वाराणसी	140.	"	विचित्रा	त्रिवेन्द्रम्
104.	"	द्वैतदुन्दुभि:	विजापुर	141.	1943	अमरभारती	वाराणसी
105.	1924	सूर्योदय:	वाराणसी	142.	1944	कौमुदी	हैदराबाद
106.	"	कामधेनु:	मद्रास	143.	1945	सुरभारती	बम्बई
107.	1925	श्रीमन्महाराजपत्रिका	मैसूर	144.	1946	मालवमयूर:	मन्दसौर
108.	1926	संस्कृतपद्यगोष्ठी	कलकत्ता	145.	1947	भारतीय विद्याभवन	बम्बई
109.	"	सुरभारती	वाराणसी	146.	"	वैदिक धर्म	कोईम्बटूर
110.	"	उद्यानपत्रिका	तिरूपति	147.	1948	ब्रह्मविद्या	कुम्भकाणम्
111.	"	सहस्रांशु:	वाराणसी	148.	"	देववाणी	वाराणसी
112.	1928	ब्राह्मणमहासम्मेलनम्	"	149.	1949	बालसंस्कृतम्	बम्बई

क्र.सं.	प्रकाशसन	पत्र/पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल
150.	”	मनोरमा	गंजाम
151.	1950	भारती	जयपुर
152.	”	भारतीविद्या	फतेहपुर
153.	”	संस्कृत प्रचारकम्	दिल्ली
154.	1951	विद्यालय पत्रिका	मथुरा
155.	”	वैदिक मनोहरा	कांचीवरम्
156.	”	प्रतिभा	वाराणसी
157.	1951	भवितव्यम्	नागपुर
158.	1953	संस्कृत सन्देश:	काठमाण्डु
159.	”	श्रीरविधर्मग्रंथावली	त्रिपुनातुरा
160.	”	पण्डितपत्रिका	वाराणसी
	”	बैजयन्ती	बागलकोट
161.	1955	भाषा	गुण्टूर
162.	1956	आराधना	हैदराबाद
163.	”	आनन्दकल्पतरू:	कोईम्बटूर
164.	”	दिव्यज्यौति:	शिमला
165.	1958	विद्या गीता	बेलगांव
166	”	तरंगिणी	हैदराबाद
167.	”	प्रणवपारिजात:	कलकत्ता
168.	”	भारतवाणी	पूना
169.	1958	संस्कृतवाणी	राजाहमुद्री
170.	”	मधुरवाणी	गदग
171.	1959	अमरवाणी	श्रीगंगानगर
172.	”	ज्ञानवर्धिनी	लखनऊ
173.	”	सुरभारती	वाराणसी
174.	”	संस्कृत प्रतिभा	दिल्ली
175.	”	शारदा	पूना
176.	”	पुराणम्	रामनगर
177.	1960	सरस्वती सौरभम्	बड़ौदा
178.	”	देववाणी	मंगेर
179.	”	गुरुकुल पत्रिका	हरिद्वार
180.	1961	संस्कृति:	पूना
181.	”	मधुकरा	दिल्ली
182.	1962	मेधा	रायपुर
183.	”	सागरिका	सागर
184.	”	मध्यभारती	जबलपुर
185.	”	चित्त-गीर्वाणी	चित्तर
186.	”	सुरभारती	बड़ौदा
187.	1963	विश्वसंस्कृतम्	होशियारपुर
188.	”	कामेश्वरसिंह संस्कृत विद्यालय पत्रिका	दरभंगा
189.	1964	संस्कृत सम्मेलनम् पत्रिका	पटना
190.		देववाणी	मुंगेर
191	”	अमृतलता	पारड़ी
192	”	कल्याण	जयपुर
193.	”	हितकारिणी	जबलपुर
194.	”	संगमिनी	प्रयाग
195.	”	ऋतम्भरा	जबलपुर
196.	1964	गाण्डीवम्	वाराणसी
197.	”	संविद्	बम्बई
198.	1965	सनातनधर्मशास्त्रम	कलकत्ता
199.	”	ऋतम्भरा	अहमदाबाद
200.	”	मालविका	भोपाल
201.	”	संस्कृत स्त्रोतस्विनी	आगरा
202.	1966	पाटलश्री:	पटना
203.	”	गुजारव:	अहमदाबाद
204.	1967	संस्कृतसमाज:	कलकत्ता
205.	”	मागधम्	आगरा
206.	1969	ऋतम्	लखनऊ
207.	1970	शिक्षाज्यौति:	दिल्ली
208.	”	प्राची	काशी
209.	”	मधुमती	उदयपुर
210.	”	विमर्श:	दिल्ली
211.	”	सुधर्मा	मैसूर
212.	1975	प्रज्ञावलोक:	बंगलौर

आज इन में से कुछ संस्कृत पत्रों का प्रकाशन बन्द हो चुका है तथा अनेक नये पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हो गया है। आज नियमित रूप से कुछ ही प्रकाशयमान पत्र पत्रिकाएं है :—

समकालीक संस्कृत की प्रमुख पत्रिकाएं निम्नलिखित हैं:-

१. नेमिषीयम्, 2. दिव्य-ज्योतिः, 3. पारिजातम्, 4. परमार्थ-सुधा, 5. बाल संस्कृतम्, 6. लोक संस्कृतम्, 7. भारतमुद्रा, 8. विश्वभाषा, 9. विश्वसंस्कृतम्, 10. सागरिका, 11. संस्कृत प्रचारकम्, 12. सुरभारती, 13. संविद्, 14. संस्कृतामृतम्, 15. सर्वगन्धा, 16. संस्कृत भवितव्यम्, 17. हिमज्योतिः 18. अजन्मा, 19. अग्निशिखा, 20. संस्कृत सम्मेलनम्, 21. पुराणम्, 22. बाल संस्कृतम् और, 23. चन्दामामा, आदि।

उपलब्धियां (1) हिमाचल गौरव स्वनाम धन्य आचार्य दिवाकर दत्त एवं उनके सहयोगी आचार्य केशव शर्मा के सत्प्रयासों से ही हिमाचल प्रदेश को संस्कृत पत्रकारिता के क्षेत्र में मूर्धन्य स्थान मिल सका है। आचार्य द्वय द्वारा प्रकाश्यमान संस्कृतपत्रिका 'दिव्यज्योतिः' गत बत्तीस वर्षों से अविच्छिन्न रूप से यथा समय प्रकाशित हो रही है। पड़ौसी राज्य पंजाब में अतुल सम्पत्ति की स्वामिनी संस्कृत सेवी संस्थाओं ने संस्कृत पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश की बात अभी सोची भी नहीं थी कि "दिव्य-ज्योतिः" ने वहां भी अपना विशेष स्थान बना लिया था। विशेषांकों की परम्परा भी इस पत्रिका की अपनी ही विशेषता है। आज भी उसके संग्रहणीय विशेषांक उपलब्ध हैं। (1) विश्वसंस्कृत सम्मेलनम्, (2) नवशब्द निर्माण विशेषांक, (3) नवकथनिका विशेषांक, (4) संस्कृत चलचित्र विशेषांक (5) श्री शंकराचार्य विशेषांक।

कर्त्तव्य निष्ठा से प्रेरित होकर प्रकाशित की जा रही ऐसी पत्रिकाएं न कभी आय का साधन बनीं और न कभी बनेंगी। इनके खाते में सदा घाटा ही रहता आया है। इनका वार्षिक शुल्क तो कागज़ की खरीद के लिए भीअपर्याप्त होता है। सम्पत्तिशाली संस्थाएं तो उस घाटे को अपनी सुरक्षित निधि से पूरा कर लेती हैं मगर इनके पास तो ऐसी सुरक्षित निधि भी न रही होगी। फिर इस घाटे का बोझ इनकी जेब पर ही पड़ता होगा। यह आचार्य जी का संस्कृत के लिए यह कितना बड़ा त्याग है। हिमाचल का सारस्वत समाज इस अद्भुत त्याग के लिए आचार्य बन्धुओं का सदा ही आभारी रहेगा। (2) हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी द्वारा इस दिशा में किए जा रहे प्रयास भी सत्य हैं। अकादमी ने अपनी पत्रिका "सोमसी" का एक भाग संस्कृत को समर्पित करके उसे हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं का मिश्रित रूप दिया था। उसका पाठकवर्ग ने सहर्ष स्वागत किया। (3) इस सफल प्रयोग से प्रोत्साहित होकर अब अकादमी स्वतन्त्र रूप से ही संस्कृत पत्रिका निकाल रही है।* विश्वास है कि संस्कृत पत्रकारिता के क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश का वर्तमान के समान भविष्य भी उज्ज्वलतम बना रहेगा।

---

* हिमाचल अकादमी द्वारा अक्तूबर 1989 में 'श्यामला' का प्रथम अंक प्रकाशित किया गया। यह पत्रिका वार्षिक है और प्रतिवर्ष अक्तूबर मास में प्रकाशित की जाती है।

सम्पादक

ममलेश्वर महादेव का मन्दिर

तीर्थ राम शर्मा

करसोग हिमाचल प्रदेश के मण्डी जनपद की एक तहसील व उपमण्डल है। इस की ऊंचाई समुद्रतल से १४०० मीटर के लगभग है। करसोग शिमला, मण्डी तथा रामपुर बुशैहर से लगभग १०० कि.मी. की परिधि में है और तीनों ओर से पक्की सड़कों से जुड़ा हुआ है। इस की सीमा एक ओर कुल्लू जिला व दूसरी ओर शिमला जिला से लगती है। करसोग नगर प्रकृति के अंचल में एक अति सुन्दर उपत्यका है जिसके दोनों ओर अमला व विमला नाम की दो छोटी नदियां हैं, मध्यभाग एक ढलानदार मैदान है। चारों ओर काफी ऊंचे पहाड़ हैं जिनमें चील, कैल व दयार के वृक्ष हैं। करसोग बाजार के दूसरे छोर पर वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के समीप ममेल गांव है जिसमें सड़क के किनारे ही ममलेश्वर महादेव का अति प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर के सम्बंध में काफी किंवदतियां हैं परन्तु विमलमुनि द्वारा रचित आदशक्ति पुराण के आधार पर कुछ तथ्य जो सामने आए हैं वे इस तरह हैं :

भारतवर्ष में चार सिद्धपीठ क्षेत्र लिखे गए हैं। एक कामरूप (आसाम) में कामाक्ष्य क्षेत्र, दूसरा कालकूट (कलकत्ता) में महाकाली क्षेत्र, तीसरा बंगाल देश में ढाकेश्वरी तथा चतुर्थ उत्तरांचल में ममलेश महाकाल क्षेत्र। इस मन्दिर का सम्बन्ध चार युगों से लिखा बताया गया है। सतियुग में भृगु ऋषि ने यहां तपस्या की थी। यहां पर ही उन का सम्बन्ध एक किन्नर कन्या ममलेश से हुआ उस से विमल तथा अमल नाम के दो पुत्र हुए। विमल अति विद्वान हुए जिन्होंने विमल पुराण की रचना की और अमल एक अति निकृष्ट व्यक्ति हुए। सम्भवतः उन्ही के नाम पर अमला और विमला दो नदियों का नामकरण हुआ जो करसोग के दोनों ओर बहती हैं। इस गांव व मन्दिर का नाम भी सम्भवतः उस किन्नर बाला के नाम पर ममेल रखा गया होगा।

त्रेता युग में परशुराम ने यहां एक तालाब के बीच में शिवलिंग की स्थापना की और एक प्रस्तर देवालय का निर्माण भी करवाया जिसके लिए उन्होंने नल व नील की सहायता भी ली। द्वापर में महाभारत युद्ध के पश्चात पांडवों को अपने बन्धु बान्धवों के मारने पर ग्लानि हुई और वे उत्तरांचल में आते हुए यहां पर ठहरे और इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। यहां एक वृकासुर नाम का राक्षस रहता था जो मनुष्य जाति पर बहुत अत्याचार करता था। महाबली भीम ने कई दिनों के मल्लयुद्ध के बाद उसे गिराया। उस समय युधिष्ठर ने उस से पूछा कि वह क्या चाहता है। उसने कहा कि यहां एक धूना लगना चाहिए जो बुझना नहीं चाहिए। तब से मन्दिर के अन्दर निरन्तर धूना जलता चला आ रहा है। इस प्रकार पौराणिक पृष्ठभूमि में यह मन्दिर अपनी प्राचीनता बनाए हुए है। आज से १½ वर्ष पूर्व मन्दिर और सड़क के बीच भूमि पर मन्दिर के लिए सरॉय के निर्माण हेतु ज्यों ही खुदाई शुरू हुई तो वहां बड़े बड़े आकार के पांच पत्थर के शिवलिंग प्राप्त हुए हैं और तीन शिवलिंग मन्दिर से लगभग १०० मी. नीचे खुदाई से मिले हैं। ऐसा लगता है कि यहां कोई और भी प्राचीन मन्दिर भूमि के नीचे दब गया है। इस के चारों ओर लगभग चार-पांच फुट लम्बे पत्थर बिना सीमेंट से जोड़े गए हैं। सम्भवतः

यहां यदि और खुदाई की जाती तो शायद अतीत पत्थरों के माध्यम से ही अपनी वाणी मुखरित करता।

मन्दिर के भीतरी प्रकोष्ठ में शिव व पार्वती की स्वर्णिम भव्य मूर्ति स्थापित है। यह मूर्ति लगभग १-१½ मीटर के आकार की है। भगवान शिव की नाभि में हीरा जड़ा है। इस प्रकोष्ठ के उत्तर की ओर एक दरवाज़ा है जो मन्दिर के नीचे भूमिगत कमरे को जाता है। यह दरवाज़ा सदियों से बन्द पड़ा है। १९८३ ई. में यहां के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने इसे खोल कर नीचे जाने और वहां से अप्राप्य सामग्री मिलने की सम्भावना से इसे खोलने का निर्णय किया। ३५ वर्षीय पुजारी श्री जीवानन्द नीचे गए परन्तु जब वह लौट कर आए तो कुछ भी नहीं बता पाए। उन की दशा एक मनोरोगी की हो गई। मानसिक विक्षिप्तता के साथ ही उन की सारी देह पर फोड़े निकल आए, पीक पड़ गई और कुछ समय के बाद उन की मृत्यु हो गई। तब से वह दरवाज़ा फिर बन्द पड़ा है। उस प्रांगण में मन्दिर का बाहय प्रकोष्ठ है जिस में लगभग ५ फुट वर्गाकार की एक पाषाण शिला है जो कि कर्ण कुण्ड (हवन कुण्ड) के ऊपर रखी गई है। १९८५ ई. में यहां सांत (महाशांति यज्ञ) हुआ था उस समय इसी कुण्ड में हवन किया जाता था।

यह मन्दिर उसी शैली में बना है जैसे कि पर्वतीय क्षेत्र में स्थित कई अन्य मन्दिर हैं—पैगोड़ा की तरह, एक के बाद दूसरी फिर तीसरी और फिर चौथी मंजिल। अति प्राचीन काल से ही जो पूजा का विधान चला आ रहा है उस का अनुसरण हो रहा है इस में वैतनिक पुजारी रखे जाते हैं जो धूप, जोत और सेवा करते हैं। मन्दिर कमेटी ने सुचारू व्यवस्था के लिए सभी प्रबन्ध किए हैं। यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था भी की है। धनाभाव में कई कार्य बन्द पड़े हैं। हिमाचल भाषा, कला एवं संस्कृति विभाग। पुरातत्व विभाग एवं भारत सरकार की सहायता व सहयोग से ही इस के पुनरुद्धार की सम्भावनाओं की अपेक्षा की जा सकती है।

एक और विशेष बात मूर्तियों के नीचे लिखी गई दो लम्बी पक्तियां हैं जो अभी पढ़ी नहीं गई हैं। आवश्यकता है उन शोधकर्त्ताओं की और भाषाविदों की जो इसे पढ़ने का प्रयास करें। इतिहास के पन्ने जहां मौन हैं वहां धातु पर अंकित ये लेख शायद हमें कुछ बता सकें और अपनी गौरवमयी संस्कृति के दर्शन करा सकें। मन्दिर के अन्दर ही चांदी की डिबिया में बहुत ही सुरक्षित एक गेहूं का दाना है जो लगभग २०० ग्राम आलू के आकार और वज़न का है जोकि अब मिट्टी हो गया है। बताया जाता है कि जिस पौधे में यह लगा था वह पौधा मन्दिर के लगभग १०० मी. की दूरी पर था, वहां अब अन्नपूर्णा मन्दिर है। भीतरी प्रकोष्ठ में मुख्य मूर्ति के पिछली ओर महाकाल की मूर्ति है जिसके दर्शन नहीं किए जाते हैं। वहां मूर्ति की ओर बिना देखे ही पानी के छींटे दे कर पूजा की जाती है। ऐसी किंवदंती है कि प्राचीन समय में जब हमारे देश में सती प्रथा प्रचलित थी तो सती होने से पूर्व स्त्रियां महाकाल के दर्शन करती थीं। ऐसा करने पर उन्हें आग से जलने का भय नहीं रहता था व आग में जलते हुए कोई कष्ट नहीं होता था। यहां दर्शन करने पर मृत्यु का भय रहता है जिसके कारण कोई ऐसा साहस नहीं करता है। ऐसा सुनने में आया है कि कुछ वर्ष पूर्व एक महात्मा यहां पर आकर ठहरे और उन्होंने उस महाकाल की मूर्ति के दर्शन करने का हठ किया। बताया गया कि वह साधु अन्धा हो गया। मन्दिर के साथ ही एक अन्य भवन है जिस में 'देओ' का मन्दिर है जिस का प्रकोष्ठ १२ वर्ष के उपरांत खुलता है। उस समय वहां हवन आदि किया जाता है।

इस मन्दिर को देख कर तीन मुख्य प्रश्न उभर कर सामने आते हैं। पहला इस की प्राचीनता का है। यदि वर्तमान मूल मन्दिर का सम्बन्ध परशुराम और पांडवों से है तो खुदाई में जो मन्दिर निकला है या और निकल

(शेष पृ० ७८ पर देखें)

प्रत्यूष गुलेरी की रचना-प्रक्रिया : कथा-संदर्भ

डॉ० कश्मीरी लाल

श्रीकान्त प्रत्यूष गुलेरी हिन्दी एवं पहाड़ी के चर्चित साहित्यकार हैं। 'अपनी अपनी अनकही' नामक कथा संग्रह उनकी अपनी कहानियों का संकलन है जिनमें आधुनिक समाज के विकृत एवं अव्यवस्थित प्रारूप को उजागर किया गया है। इन कहानियों में अधिकारी, कर्मचारी, चपरासी, चौकीदार मिलेंगे, नौकर एवं मालिक मिलेंगे। अध्यापक, प्राध्यापक, डॉक्टर, नर्स, रोगी मिलेंगे। गुण्डे और सिपाही मिलेंगे। परन्तु समाज में विभिन्न प्रस्थिति (स्टेटस) के इन लोगों को अराजकता एवं स्वार्थ का शिकार बनते देखेंगे।

कार्यालय-कर्मी अपने दायित्व वहन से परहेज कर रहे हैं। ऐसा लग रहा है जैसे वहाँ लोग मनोरंजनार्थ आते हैं। दफ्तर जंगिया गया है। कहानी में मलिाएँ कर्मचारी भी भोगात्मक दृष्टिकोण में विश्वास रख रही हैं। गाँवों में असली शासक पटवारी होता है। वह किसी को भी गालियाँ बक सकता है। किसी को भी जेल भिजवा सकता है। किसी की भी लड़की पर हाथ डाल सकता है क्योंकि थाना-पुलिस उसकी थाली में खाता है (यह भी अच्छी रही) रैस्ट हाउस तो हैं ही अय्याशी के अड्डे। नैनसुख चौकीदार के शब्दों में—'सर! दफ्तर का बाबू मुझे धमका रहा है—एक कमरे का दरवाजा खोल दूँ... साहब! आए दिन दफ्तर के बाबुओं की पार्टियाँ दम नहीं लेती... खाली बोतलें, माँस की सीखें और खाली प्लेटें मैं उठाता फिरूँ। (पृष्ठ ६७)

स्वास्थ्य संस्थाओं का तो बहुत ही बुरा हाल है। अस्पतालों में डॉक्टरों का दुर्व्यवहार एवं उपेक्षा रोगियों को जीते जी मार डालती है। रामधन अनुभव करता है, सच कहे देता हूँ कुछ दिन और वहाँ (अस्पताल में) रहता तो भला चंगा भी दस दिन न गुजारता। डॉक्टर हैं कि भेड़िए या ज़िंदा यमदूत। (पृ० ५०) ऐसा लगता है कि कहानीकार ने इन संस्थाओं को अत्यंत निकट से देखा है। सप्ताह में एक बार हस्पताल में डॉक्टर मिल जाए तो समझो बहुत बड़ा भाग्य लेकर निकले। पहुंच वालों को दवाई मिलती है, उन्हीं की सुनवाई होती है। यह भी अच्छी रही। (पृ० २३) डॉ० गुलेरी ने सामाजिक यथार्थ को गम्भीरता से समझा है। 'बहुत हो चुका' कहानी में हस्पतालों के दुष्चकों का चित्रण अत्यंत प्रभावी है। दयालु एवं सहृदय डॉक्टर को भर्त्सना सहनी पड़ती है। (पृ० ४०) 'टुकड़े-टुकड़े विश्वास' शीर्षक कहानी में दमघोटू हस्पतालों का त्रासद चित्र उभरता है। 'अपनी-अपनी अनकही' में भी इन संस्थाओं के क्रिया-क्लाप कहे गए हैं।

डॉ० गुलेरी ने पात्रों के माध्यम से परम्परा एवं आधुनिकता के संघर्ष एवं टकराहट को अभिव्यक्त किया है। समाज की परम्परापोषित लड़की को लड़कों के साथ-साथ घूमने की अनुमति नहीं। शिक्षा का आधुनिक प्रचार-प्रसार भी इस रुढ़ि को बदल नहीं पाया। परन्तु आज की युवती इस रुढ़ि के भंजन में ही विश्वास रखती है। 'आज की छोकरियाँ मर्दों के साथ घूमना-फिरना इस सबको फ़ारवर्डनेस कहती हैं। (पृष्ठ ४) परन्तु परम्परित महिलाएँ कहती हैं,–'मुँहजली, छी:-छी: ऐसी फरवर्डनेस! (पृष्ठ ४) इसी दृष्टि वाले लोग लड़की के जन्म की अपेक्षा लड़के के जन्म को वरीयता देते हैं—'तीसरे दिन ऋचा को पता चला कि

उसने वास्तव में लड़की को जन्म दिया है। इससे पूर्व सब उसे लड़का बता चुके थे। इसलिए कि उसके कमजोर दिल पर किसी प्रकार का कोई मानसिक तनाव न बैठ जाए।' (पृष्ठ १७) इसी प्रकार प्राचीन भारतीय समाज परिवार-नियोजन का कट्टर विरोधी रहा है। यही कारण है कि रामधन जैसे लोग हर साल पत्नी को गर्भ दे डालते हैं। (पृष्ठ ४८)

कानून के प्रति चेतना एवं भ्रष्ट कानूनी तंत्र को गुलेरी की कई कहानियाँ उद्घाटित करती हैं। कानून के रक्षक ही कानून को ताक में रखकर गुण्डा तत्वों के संरक्षक बन बैठे हैं। सामान्य जन का सामान्य जीवन तो कष्टों एवं यातनाओं में ठहर गया है। किसी सामाजिक के जीवन का यथार्थ यह है कि उसके जान-माल की रक्षा का जिम्मा न तो सरकार लेती है न ही सरकारी व्यवस्था। 'बिच्छू' जैसी कहानी में लेखक ने इसी अव्यवस्था एवं असुरक्षा का करुण चित्र उभारा है। (पृष्ठ १०-१३) भ्रष्ट एवं रिश्वतखोर पुलिस को सरकारी संरक्षण प्राप्त है।

उधर नैतिकता का संकल्प अपना मूल्य खो रहा है। इस ह्रास को 'दफ्तर जंगिया गया है' शीर्षक कहानी में देखा जा सकता है जहाँ काम की जगह काम-सुख को प्रतिष्ठा मिल रही है। इन दफ्तरों में ही शीला जैसी महिला कर्मचारी यौनसुख का आनंद उठा लेती हैं। (पृष्ठ २) 'ममता' कहानी में तो नैतिक आवमूल्यन की पराकाष्ठा है। वहाँ यौनाचरण ही मुख्य है। डॉक्टर नोसौ के साथ यौन-क्रीड़ाओं में मस्त होकर अपने नैतिक कर्त्तव्य एवं नैतिकता को भुलाए बैठे हैं। (पृष्ठ १४) 'बिच्छू' कहानी की विशाल भीड़ अपने नैतिक कर्त्तव्य को विस्मृत कर, अनासक्त होकर तमाशा देख रही है। (पृष्ठ ९) सुखकर्मा जैसी कामकाजी युवतियाँ कौमार्यावस्था में ही गर्भ धारण कर रही हैं, गर्भपात करवा रही हैं।

पारिवारिक विघटन एवं पारिवारिक त्रास आज की विचारधारा की देन है। सुखदा जैसी गृहणियों का जीवन एवं पारिवारिक सुख ध्वस्त किया जा रहा है। वह एक अवसन्न एवं त्रासद दाम्पत्य झेल रही है। घर में पाव-भर दाने पेट भरने को हों या न हों, उसके पति रामधन को उससे कोई सरोकार नहीं। 'टूटा हुआ आदमी' की संधला का पारिवारिक जीवन भी इसी प्रकार की करुण त्रासदी के रूप में उभरता है। उसका आदमी उसे जीभर पीटता है। स्त्री पर अत्याचार सदियों से होते चले आ रहे हैं। घर हो या बाहर वह तो मानो पुरुष की इच्छा का भक्षण मात्र है। बाहर निकली स्त्री को बाहर का पुरुष तंग करता है। (पृष्ठ १) तथा घर बैठी स्त्री को घर वाला।

कथानक-अपनाव एवं भाव-सम्प्रेषण की दृष्टि से डॉ० प्रत्यूष के इस पहले संकलन की कहानियों में आज के जीवन एवं तत्संबंधी विसंगतियों को ही अधिक स्थान मिला है। लूट-पाट एवं छीना-झपटी का घटनाचक्रक प्रबल हो रहा हैं (बिच्छू) सरकारी तंत्र चुप है। नेता अकर्मण्य सिद्ध हो रहे हैं। सर्वत्र अर्थसत्ता का प्राबल्य है। प्रेम को भी अर्थ-सामर्थ्य के संदर्भ में परखा जाने लगा है। (पृष्ठ २६) पैसे से न्याय खरीदा जा सकता है। सारे रास्ते पैसे से होकर निकलते हैं।

राष्ट्रीय-चेतना एवं राष्ट्र-भक्ति 'मंडराते मेघ' नामक कहानी में देखी जा सकती है। देश पर मर मिटने वाले युवकों की आज भी कमी नहीं। सन् १९६५ के युद्ध की घटनात्मकता को आधार बनाकर लिखी गई इस कहानी में भारत-माता के लिए, आत्म सम्मान के लिए उत्सर्ग की प्रेरणा मिलती है। 'लाल मेरे' ! यह ध्यान रहे—भारत माता की ओर कोई विपक्षी कुदृष्टि से ताक न पाए, उंगली से संकेत न करे। देश की

रक्षा के लिए अपने प्राणों की परवाह मत करना। बिना विजयश्री के लौटना कायरों का कार्य है, वीर पुरुष तो युद्धभूमि में ही सुहाते हैं। युद्ध भूमि ही वीरों की क्रीड़ास्थली है। (पृष्ठ ३२)

अभिव्यक्ति पक्ष को देखा जाए तो डॉ० गुलेरी की इन कहानियों में घटनाओं की चित्रात्मकता, पात्रों की संलापात्मक संस्थितियों तथा सहज भाषिक विधान के दर्शन होते हैं। 'शीला ने घड़ी-सी बारीक अंगुलियों से शबीर की कलाई पकड़ते हुए कहा (पृष्ठ एक) मेरे सिर में हथौड़े चलने की आवाज़ें आ रही हैं। (पृष्ठ २८) सभी ओर धनन-धनन... गोलियाँ चल रही थीं, बरस रही थीं (पृष्ठ ३३) 'अपनी-अपनी अनकही' शीर्षक कहानी वर्णनात्मक शैली में है। पात्रों के संलाप स्वाभाविक एवं पात्रों की स्तर-स्थिति के अनुरूप हैं। सम्प्रेषणीयता को कहानीकार ने अभीष्ट समझा है। देशज, आंचलिक एवं अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग संदर्भानुकूल है। 'चकन्धु' शब्द का प्रयोग राजदेव सिंह की प्रास्थति (स्टेटॅस) की व्याख्या करता है। डंगली, छींटक, छुकराट, सुक्खण, वो-शरण, सौक्खा जैसे शब्द लेखक के आंचलिक घटना-चित्रण को संकेतित करते हैं। ऐन्ट्री, कॉलजेटी, फारिंग, लोकल, प्रोग्राम, टूरिंग, ऑटोरिक्शा, प्रॉबलम, रेडिएशन्ज़, साईड अफेक्ट्स, स्टेट्स, सीरियल, फ्री, कन्फर्म, पोस्टिंग स्टेशन जैसे शब्द प्राय: प्रचलित एवं गृहीत होने के कारण जहाँ-तहाँ प्रयुक्त होकर प्रभाव उत्पन्न करते हैं। सरल एवं सहज शब्द चयन स्तुत्य है। समस्यानिक सामंजस्य एवं कुलक प्रयोग भी प्राय: हुआ है। कई स्थानों पर समांतरित, विचलित एवं अप्रप्रस्तुत प्रयोग हुए हैं। मुहावरों का प्रयोग भी यथास्थान मिलता है। सभी कहानियाँ साहित्यिक समाज के प्रारूप के अनुरूप रचित हैं।

डॉ० जवाहर लाल हण्डू लोकवार्ता कार्यशाला के दौरान प्रबुद्ध लेखकों व कलाकारों को सम्बोधित करते हुए।

शिव शक्ति का प्रादुर्भाव

प्रेम शर्मा

मनुष्य तो इच्छाओं का दास होता ही है पर देवगण भी इससे छुटकारा नहीं पा सकता। न जाने नर लोक भलाई के लिए अथवा निजी भाव प्रकाशनार्थ सेवा में वर्तमान शक्ति ने एक ऐसा स्थान चुना जो तब सम्भवतः सिद्धों का स्थान था या शिव भक्तों की तपोभूमि अथवा पावन धरती, अन्यथा शिव शक्ति जैसी महान शक्ति वर्तमान स्थान पर प्रकट न होती। स्थानीय लोग स्मरण काल सीमा तो भूल चुके हैं परन्तु प्रादुर्भूति की विचित्र स्मतियां अवश्य बताया करते हैं। उन्हीं के आधार पर कुछ जिज्ञासु अन्वेषण के आधार पर लेखनी उठाने का दुःसाहस कर रहा हूँ। चम्बा से मणि महेश की ओर चौबीस मील दूर गैहरा नाम के स्थान से ऊपर की ओर चार मील या चम्बा से सताईस मील दूर लूणा नाम के स्थान से दो मील चढ़ाई चढ़ने के उपरान्त छतराड़ी नामक स्थान है। इसके नामकरण की भी ऐतिहासिक स्मृतियां हैं। कुछ कहते हैं छती नाड़ी से, दूसरे बताते हैं छत्ती लाहड़ी से विकृत होकर छतराड़ी नाम पड़ा है। संक्षेप में घटनाएं इस प्रकार हैं :—

इस स्थान पर जल का नितान्त अभाव था। शिव शक्ति की कृपा से अथवा अपनी भक्ति बल से एक महात्मा ने छतीस स्थानों से पानी बहाया हुआ है। ऊंचाई से पानी गिरना लोक भाषा में नाड़ा कहलाता है उसी का स्त्रीलिंग शब्द नाड़ी है अर्थात् छतीस नाड़ों वाली भूमि। दूसरी स्मृति के अनुसार राजा बलीभद्र ने प्रायश्चित रूप में शिव शक्ति के लिए छत्तीस लाहड़ी (एक लाहड़ी-तीन एकड़) भूमि प्रदान की थी इसलिए छती लाहड़ी का विकृत रूप छतराड़ी बन गया।

प्रादुर्भाव की पृष्ठ भूमिका बात छठी शताब्दी के अन्तिम भाग या सातवीं के आरम्भ की लगती है। आज का यह छतराड़ी नाम का स्थान केवल ढ़ोरों की चारागाह मात्र थी। अनेक तरह के वृक्षों से घिरा हुआ जहां आज शिव शक्ति का मन्दिर वर्तमान है। यहां लोक भाषा में वुकलैं नाम का पुराना वृक्ष था। इस स्थान से लगभग एक मील पीछे गैहरा की ओर मेढ़ी नाम का गांव अब भी वर्तमान है, यहां के निवासी अपने मवेशियों को चराने छतराड़ी ले आते हैं। एक गृहस्थी की गाय कुछ दिनों से अच्छी भली होते हुए भी शाम को घर पहुंच कर बहुत कम या बिल्कुल ही दूध नहीं देती। घर वाले चिन्तातुर हो रहे थे, दूध न देने के कारण पर। एक दिन मवेशी चराने आया व्यक्ति दिन भर उस गाय को आंखों से ओझल नहीं होने दे रहा था। उसने देखा गाय वुकलैं के नीचे बड़ी तल्लीनता में खड़ी है और उसके थनों में से स्वतः ही दूध की धाराएं बह रही हैं। ग्वाला और भी चकित हो गया। सोचने लगा क्या है यहाँ जो गाय के थन अपने आप ही बह पड़ते हैं। सोच विचार कर घर चला गया और दूसरे दिन खोदने के लिए साधन लेकर वहीं पहुंचा। भूमि खोदी गई। थोड़ी सी खोदने के उपरान्त उसे एक प्रतिमा दिखाई दी। अब वह सोचने लगा यह देवी प्रतिमा ही दूध बहा कर पीती होगी। पर यह है कौन सी देवी 'दुर्गा, चामुण्डा, शक्ति, काली, ब्राहमी, महेश्वरी, शैलपुत्री, बाराही, चन्द्रघंटा, कात्यायनी आदि में से कौन सी है। वैष्णवी के लक्षण मूर्ति में प्रतीत न होने से महागौरी की पहचान नहीं हो पा रही थी जिससे वह उस रीति से स्थापना कर सके। चिन्ता के भार में दवा बेचारा विचार सागर में बहता हुआ शाम को घर लौट

आया। स्वप्न में उसने देखा वही प्रतिमा कह रही है— चिन्ता मत करो, मैं शिव शक्ति हूँ। जहां से मैं निकली हूँ वहीं मेरी स्थापना करके पूजन किया करो। अब क्या था एक छोटा सा छप्परनुमा मन्दिर बना कर देवी का पूजन होने लगा।

कभी-कभी देवता भी इच्छा के दास हो जाते हैं। इसलिए एक स्मृति के अनुसार कहा जाता है कि शिव शक्ति की एक दूसरी बहन भी है जो 'प्रौली वाली माता' के नाम से यहाँ जानी जाती है। ये दोनों बहनें अपनी सम्पति बांटने बैठी तब शिव शक्ति लालच में आ गई और दूसरी बहन को बहाना बना कर थोड़ी देर के लिए वहां से टाल दिया तथा सारी सम्पति पर कब्जा कर लिया। जब दूसरी बहन आई तो उसको अंगूठा दिखा दिया। वह बेचारी रोती हुई गिरती पड़ती गैहरा की ओर चल पड़ी। एक स्थान पर उसे ठोकर लगी, पांवो से रुधिर बहने लगा, जहां की भूमि आज भी लाल रंग की जिज्ञासु देख सकते हैं। उससे थोड़ा और ऊपर आकर बैठकर रोती रही जहां की भूमि उसके आंसुओं से मलिन काले रंग की आज भी दिखाई देती है। यहीं पर इसकी स्थापना की हुई है।

इधर प्रतिदिन शिव शक्ति ने अपने चमत्कारी प्रभाव दिखाने आरम्भ कर दिए। दूर-दूर तक देवी चमत्कार लोगों को विदित हो गए; ख्याति बढ़ती गई। एक दिन ऐसा भी आया जब एक महात्मा का शिष्य यहां से लगभग एक मील नीचे पानी के लिए गया हुआ रीछों द्वारा मार दिया गया। जब महात्मा ने शिष्य को न आया हुआ जानकर जल की ओर जाते हुए मार्ग में शिष्य को मरे पड़े देखा। असहय दु:ख से वह महात्मा तड़फ उठा। पुन: देवी के मन्दिर में पहुंच कर देवी अराधना में हठधर्मी अपना ली। देवी उसकी साधना से प्रसन्न होकर प्रकट हुई और कठोर साधना का कारण पूछा। महात्मा ने पानी के अभाव के कारण पानी लाने गए शिष्य की मृत्यु का वर्णन करते हुए देवी से प्रार्थना की कि इस स्थान पर जो पानी का नितान्त अभाव है; उसे दूर करो। देवी ने महात्मा से कहा जहां-जहां चाहते हो उस-उस स्थान पर सोठी चुभो डालो; पानी निकल आएगा। शिष्य के दु:ख से दु:खी महात्मा ने उसी प्रकार छतीस स्थानों पर सोठी चुभो कर पानी बहा दिया। अब क्या था स्थान की रौनक बढ़ती गई और तत्कालीन राजा बलीभद्र वहां पहुंचे तथा एक विशेष कारण से देवी के लिए छतीस लाहड़ी भूमि दान कर दी।

देवी के प्रभावों से प्रभावित होकर राजा मेरु वर्मा ने श्री रामचन्द्र पाल सिंह के मतानुसार ७०० ए.डी. में गोगा नाम के प्रसिद्ध बढ़ई से मन्दिर का निर्माण कराया। पारंगत बढ़ई ने एक खम्बे पर घूमने वाले मन्दिर का निर्माण किया। देवी मन्दिर की विचित्रता को देखकर प्रसन्न हुई और एक ही हाथ वाले बढ़ई को दूसरा हाथ प्रदान किया (यहां से कुछ मील दूर रुण्हूंकोठी नाम के स्थान पर रहने वाले राजा ने इस बढ़ई का एक हाथ कटवाया था) बढ़ई ने भी देवी से प्रार्थना की कि हे शिव शक्ति मां! मुझे सदा अपने ही सामने रखना। हुआ यह कि जैसे ही मन्दिर के अन्तिम स्लेट को बढ़ई ने कील ठोंकी; ऊपर से गिरा मन्दिर के सेहन में पड़ते ही मर गया। अब सुबह-शाम जब भी देवी पूजन किया जाता है सर्वप्रथम उसी बढ़ई को धूप दिया जाता है। उस महात्मा की समाधि भी आज पंडित पयूंदी राम के नए घर की ओर एक तरफ वर्तमान है।

शिव शक्ति मन्दिर के साथ ही शिव मन्दिर भी वर्तमान है। जिनमें एक पत्थर की मूर्ति और कलाकार द्वारा प्रदर्शित नैपुण्य आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इस ओर शिव शक्ति के मन्दिर के लिए प्रयुक्त लकड़ी पर जो खुणतर की गई है वह तो देश-विदेश के जिज्ञासुओं के लिए विशेष महता रखती है। इसका अध्ययन करने के

लिए इंग्लैंड, जर्मन, अमेरिकन समय-समय पर आया करते हैं। वर्ष में जब भी महेश न्हौष का दिन आता है उस दिन से तीन दिन की जातर यहां लगा करती है। दूर-दूर के लोग देवी के दर्शन करने और व्यापार करने के लिए आते हैं। यात्रा के आरम्भ में देवी के युद्ध की झांकी भी प्रस्तुत की जाती है। पुरुषों का समूह नृत्य देखते ही बनता है। इस क्षेत्र के लोग अपनी-अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए देवी से तरह-तरह की मनोतियां करते हैं और मनोरथ पूर्ति पर स्वीकारी भेंट अर्पण किया करते हैं जिनमें मेढ़ा और बकरे की बलि भी सम्मिलित हैं।

बात भावना की मुख्य है। श्रद्धालु जिस भावना से जिस ब्रहमपूर्वक देव्यार्चन करते हैं, पूर्ण होकर रहती है। जो प्रतिमा भूमि से निकली थी वह बहुत छोटी जैसी है। आधुनिक मूर्ति तो सातवीं शताब्दी में बनी धातु मूर्ति है। मूर्ति का निर्माण प्रौढ़ स्त्री के आकार प्रकार में किया गया है। अलंकृत मूर्ति को दूर से देखने पर लगता है कि सज्जी हुई जननी सामने खड़ी है।

तमिलनाडु ललित कला अकादमी द्वारा शिमला में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम के अवसर पर मुख्यातिथि श्री ए. बालाकृष्णन मेनन माननीय मुख्य न्यायाधीश हि०प्र० का स्वागत करती हुई नृत्यांगनाएं।

त्रिवेणी महादेव : एक दर्शनीय स्थल

शशिकान्त शास्त्री

प्राचीन काल से ही हिमाचल को देव भूमि के नाम से पुकारा जाता है। यहां की चित्रकला तो इसका विशेष केन्द्र है। मेलों, त्यौहारों व अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अन्य प्रदेशों की तरह हिमाचल में भी अनेक भव्य और विशाल देवी-देवताओं के मन्दिर विद्यमान हैं, और इसका पौराणिक नाम जालन्धर पीठ है। शिव पुराण और ब्राह्मण्ड पुराण में जालन्धर पीठ को बड़ा महत्व दिया है। यह क्षेत्र शिव शक्ति क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस कारण इस प्रदेश के अतिरिक्त ऐसा कोई प्रदेश नहीं जो इतना पवित्र और महत्त्वपूर्ण हो सके। अनेक देवी देवताओं के मन्दिर हैं। जहां शिव मन्दिरों में भक्तगण सुबह-शाम हर-हर महादेव का जयकारा लगाते हैं, वहां ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर स्थित देवी मन्दिरों में जाकर श्रद्धालु जै माता का स्वर गुंजन करते भी नज़र आते हैं। जिनमें ज्वालामुखी, कांगड़ा बज्रेश्वरी, नैना देवी, चिन्तपूर्णी, आशापुरी, पुत्र दायिनी, सिमसा देवी व चामुण्डा नंदिकेश्वर जैसे पवित्र तीर्थ स्थलों के नाम आते हैं।

प्रदेश की इस पवित्र देवभूमि में शिवालिक स्थानों में बैजनाथ, चमुक्खा महादेव, महाकाल, मार्कण्डेय, कुञ्जद्वार, नर्वदेश्वर त्रिवेणी महादेव जैसे अनेकों अत्यन्त प्राचीन मन्दिर हैं। जो प्राचीनता और स्थापत्य की दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखते हैं। चमुक्खा महादेव की मूर्ति तो मूर्तिकला की दृष्टि से उत्तर भारत में सर्वश्रेष्ठ है। कुछ वर्ष पूर्व केन्द्रीय पुरातत्व विभाग का पर्यटक दल इस बार संकेत पाकर, चमुक्खा महादेव की मूर्ति को देखने आया और देखकर बहुत प्रभावित हुआ।

इन मन्दिरों की चित्रकला अलग-अलग है, जो देखने में बाहर से तो काफी पुरानी लगती है, परन्तु भीतर से एकदम नवीन नज़र आती है। दीवारों पर चारों ओर चित्रित चित्र तथा पत्थरों पर खुदे अनेक चित्र एकदम सजीव से लगते हैं। प्रदेश में स्थित देव मन्दिरों में एक ऐसा ही विशेष पुरातन त्रिवेणी महादेव जी का शिवालिक स्थान है जो ठीक उत्तर की ओर जहां जालन्धर पीठ का आरम्भ होना भी बताते हैं।

जहां एक ओर विपाशा (व्यासा) विनवा व क्षीर गंगा जैसी पवित्र नदियों का संगम है वहाँ दूसरी ओर कांगड़ा-मण्डी का भी संगम है। यह स्थान बैजनाथ से ३० किलोमीटर दूर सांडापतन के पास बना सदियों पुराना विशाल शिव मन्दिर है। जहां की चारों ओर दीवार मजबूत पत्थरों से बनी है। प्रवेश का सिंहद्वार एक ही पत्थर के होने से इस स्थान की शोभा बढ़ाने में चार-चांद लगा देता है।

निर्माण व महत्व चारों ओर ऊंची-ऊंची गगन चुम्बी पहाड़ियों से यह घिरा हुआ है। दूर-दूर छोटे-छोटे गांव हैं और वहां के श्रद्धालु विशेष पर्वों में आकर त्रिवेणी महादेव का दर्शन पाकर कृतार्थ मानते हैं।

हर स्थान का अपना विशेष महत्व होता है, और उसके पीछे किसी न किसी घटना विशेष का होना जरूरी है। चाहे उसका ठोस प्रमाण हमारे पास न हो, फिर भी येन-केन प्रकारेण उसका कुछ कारण ढूंढ़ने में

महत्व तो होता ही है जिसे लोक विश्वासों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता हैं।

इस मन्दिर का निर्माण कब और कैसे हुआ इसके बारे में कहा जाता है, कि एक बार इस स्थान पर सिद्ध महात्मा रहते थे। जिनका प्रचार सर्वत्र फैल चुका था। उन पर लोगों का अटूट विश्वास था। जिस गुफा में वह रहते थे, वह गुफा अब भी मन्दिर के ऊपर पहाड़ी में वैसे ही नज़र आती है और आजकल कोई न कोई महात्मा वहां आकर अपनी शरण लेते हैं। वैसे तो मन्दिर के निर्माण में काफी सुधार हो चुका है। विपाशा नदी की बाढ़ से इसकी दीवारें टूट गई थीं लेकिन मन्दिर वैसे ही अडिग खड़ा रहा। अब तो हिमाचल सरकार ने भी धन देकर इसकी मुरम्मत करवाई है। यह जो खण्डहर का रूप धारण कर रहा था, शायद उससे बच जाये ऐसा प्रतीत हो रहा है, नहीं तो शायद इस मन्दिर का निरन्तर पानी के तेज बहाव से टूटकर नामो निशान न रहता, इसी कारण यहां महात्मा भी कई आए और चले गए लेकिन लोगों का सहयोग पूर्ण मिलता रहा। इस समय महात्मा जैनेन्द्रगिरि जी की देख रेख में मन्दिर की मुरम्मत का जो कार्य भक्तों के सहयोग से तथा अपने अथक परिश्रम से चल रहा है उससे त्रिवेणी महादेव जी का स्थान पर्यटकों के लिए दर्शनीय बन गया है।

उस समय मण्डी के एक वजीर थे जिनके कोई सन्तान न थी और वे हर समय इसी सोच में चिन्तित रहते थे। लोगों ने वजीर से कहा कि समीप ही त्रिवेणी संगम के पास पहाड़ की गुफा में एक प्रसिद्ध चमत्कारी महात्मा रहते हैं। आप उनके दर्शन क्यों नहीं करते। हो सकता है कि उनकी आप पर कृपा हो जाए। इतना कहने पर वे दोनों बाबा के पास पहुँचे। उनका अभिप्राय जानकर बाबा जी ने कहा यदि आप इस स्थान पर शिव मन्दिर की स्थापना करें तो अवश्य ही तुम दोनों की इच्छा पूरी होगी।

उस समय बजीर ने काफी लागत से इस शिव मन्दिर का निर्माण करवाया तदुपरान्त उनके घर पुत्र हुआ और कुछ दिनों में शिवरात्रि आने वाली थी। उस दिन बजीर ने बहुत बड़ा यज्ञ किया और समस्त ग्रामीणों को उस भोज में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। उसी समय से लेकर हर वर्ष शिवरात्रि के दिन भारी मेला लगता है। इसके अतिरिक्त श्रावण के प्रत्येक सोमवार या अन्य व्रत-उत्सवों में श्रद्धालुओं की भीड़ रहती है। शिव मन्दिर के नीचे से एक जल की धारा निकलती है जिसे क्षीर गंगा कहा जाता है। दूसरी ओर से विपाशा और विनवा का संगम होने से इस स्थान को त्रिवेणी नाम से पुकारा जाता है। प्राकृतिक और सुन्दरता की दृष्टि से तो यहां की भूमि सम्पूर्ण विश्व का मान चित्र है। प्रदेश में अधिकतर ऐसे भी मन्दिर हैं जो अब भी वैसे ही अडिग खड़े हैं। अगर हम अपनी कला एवं संस्कृति को जीवित देखना चाहते हैं तो अवश्य हमें ऐसे मन्दिरों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(पृष्ठ ५० का शेष)

सकता है उस का सम्बंध किस काल से होगा ? दूसरा प्रश्न उस काल की भाषा लिपि का है जो वहां अंकित है। तीसरा प्रश्न उन रहस्यों का है जिन का वैज्ञानिक विश्लेषण अभी मनुष्य नहीं कर पाया है। तथ्य कुछ भी हो लेकिन कुछ ऐसे रहस्य हैं जो मानव को समझने हैं। मूर्तिकला का ऐसा उत्कृष्ट नमूना दुर्लभ है। जिस काल में भाषा तथा अन्य कलाएं (मूर्तिकला, भवन निर्माण कला आदि) इतनी विकसित थी उस की जानकारी शोध का विषय है और यह मन्दिर इस दिशा में हमें एक नया मार्ग और नई दिशा देने में समर्थ है।

बहुला

तारा शर्मा

गऊ-पूजा हिन्दुओं का सबसे बड़ा धर्म है। हिन्दू लोग गऊ को गंगा-जमुना जैसी नदियों की तरह पवित्र मानते हैं। भारत देव-भूमि है और यहां की जनता को अपने धर्म व देवताओं पर अटूट विश्वास है। यह वह भूमि है जहां पर घटी हुई घटनाओं को यहां के भोले-भाले लोगों ने उत्सवों, त्यौहारों का नाम दिया है। यही कारण है कि जनता जनार्दन के अटूट व दृढ़ विश्वास से आज हमारा धर्म, संस्कृति दूसरे देशों के लिये प्रेरणा बन कर आगे आई है।

हिमाचल प्रदेश के ज़िला मण्डी में 'बहुला' नाम का व्रत बड़ी धूम-धाम से आज भी मनाया जाता है। स्त्रियां इस दिन गऊ की पूजा करती हैं और गऊ भी ऐसी होनी चाहिए जिसका बछड़ा साथ हो। इस दिन स्त्रियां गाय व बछड़े के नाक, कान, आंखे, जौ-आटे की बनाती हैं और एक विशेष प्रकार का घास जो श्रावण व भादों मास में ही देखा जाता है, उसकी मालायें बनाकर पूजा के समय गाय व बछड़े को पहनाती हैं। इस दिन जिस भी औरत ने व्रत रखा हो उसे जौ की रोटी खानी होती है। यह प्रथा भी प्रचलित है कि जब औरतें भोजन कर रही हों तो वह बिल्कुल भी बोलती नहीं। उनका कहना है कि यदि इस व्रत में भोजन करती बार मौनव्रत टूट जाये तो औलाद गूंगी होती है। आखिर इस व्रत को इतनी धूमधाम से मनाने के पीछे कोई तो कारण होगा और फिर क्यों न व्यक्ति विशेष का दिल इस रोचक विषय को सुनने के लिये लालायित होगा।

कहते हैं जिस आधार पर इस व्रत का नाम 'बहुला' पड़ा, बहुला एक गाय थी जो प्रतिदिन जंगल में घास चरने जाया करती थी तथा सांझ होते ही घर वापिस आती थी। श्रावण मास के दिन थे चारों तरफ हरियाली थी और चरान भी घास से भरे पूरे थे। बहुला घास चुगती हुई काफी आगे निकल गई जब सांच होने लगी तो उसे अपने बछड़े का ख्याल आया और वह घर वापसि जाने लगी। अभी मुड़ी ही थी कि उसकी नजर अचानक उस व्याघ्र पर पड़ी जो एक छोटी सी पहाड़ी पर बैठा था। बहुला भय से कांपने लगी। व्याघ्र भी शिकार को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बहुला से कहने लगा कि आज कई दिनों के उपरान्त शिकार हाथ आया है, ऐसा सुनकर बहुला लाचार सी होकर व्याघ्र से प्रार्थना करती है कि मेरा एक मास की आयु का बछड़ा है, वह इस समय भूखा होगा मैं उसे अपना दूध पिलाकर पुनः वापिस आ जाऊंगी, यह मैं तुमसे वायदा करती हूँ परन्तु व्याघ्र को विश्वास नहीं होता और वह बहुला को कहता है कि मैं अपने हाथ में आये हुए शिकार को कैसे छोड़ सकता हूँ। लेकिन बहुला की आंखों से बहते हुए आसुंओं को देखकर व्याघ्र का हृदय पसीज जाता है और वह उसे कुछ समय के लिये जाने की इजाजत दे देता है। बहुला ममतावश घर पहुंचती है और बछड़ा भी माँ के रंभाने की आवाज सुनकर रंभाना शुरु कर देता है और मां का दूध पीने लगता है माँ की मनःस्थिति को समझने का प्रयत्न भी करता है तथा बार-बार दुःख का कारण पूछता है परन्तु बहुला केवल दूध पिलाते-पिलाते उसके शरीर को मोहवश चाटती रहती है। जाते समय बछड़े को

(शेष पृष्ठ ७८ पर देखें)

वत्स्य जी से अन्तिम भेंट

डॉ० प्रत्यूष गुलेरी

दिल्ली में हिमाचल हितकारिणी सभा का अधिवेशन था। अनुमानतः सन् १९७० ई० की बात होगी जिसमें हिमाचल के पहाड़ी कवियों को सभा की ओर से पहाड़ी कवि-सम्मेलन में आमंत्रित किया गया था। डॉ० मनोहर लाल से तब नया-नया परिचय हुआ था - एक साथ रचनाओं के प्रकाशन-क्रम से। इसी साहित्यिक कार्यक्रम में उन्होंने मुलाकात करवाई थी—हिन्दी बाल-साहित्य के अमरसाहित्यकार श्री सन्त राम वत्स्य जी से। वत्स जी का नाम त्यों जाना-पहचाना था परन्तु व्यक्तिगत तौर पर निकटता से मुलाकात पहली मुलाकात थी। यह जानकर खुशी का और भी ठिकाना नहीं रहा कि वत्स जी हिमाचल की सुरम्य धरा पालमपुर के थे।

पहली मुलाकात में पंडित जी ने पहाड़ी रचनाकारों—डॉ० पीयूष गुलेरी, सागर पालमपुरी, डॉ० गौतम व्यथित, देसराज डोगरा, जयदेव किरण, भक्तराम| मुसाफिर, प्रेम भारद्वाज आदि से पहाड़ी भाषा को लेकर खूब जमकर चर्चा की थी ऐसा मुझे पूरा स्मरण है। यह वह समय था जब पहाड़ी भाषा को लेकर साहित्यकारों, समाज-सेवियों व राजनेताओं के मन में कई प्रकार की भ्रांतियां घर की हुई थीं। तब से लेकर मृत्यु से कोई छः माह पूर्व तक वत्स जी से मेरे सम्बन्धों का तांतां ऐसा बन्धा कि वे एक ही पविार के महसूस होते रहे। डॉ० मनोहर लाल उनके जामाता हैं। मनोहर लाल जी से मेरी निजी दोस्ती रही है। आलोचना में दखल रखने के कारण मैंने उन्हें जब 'हिमाचली शुक्ल' नाम दिया तो एक बार वे खूब हँसे थे और मैं अक्सर उन्हें आज भी शुक्ल कह कर पुकारता हूँ। दिल्ली में अक्सर उनके आना-जाना बना रहता। ऐसा बहुधा कम ही हुआ होगा कि दिल्ली गया हूँ और वत्स जी से शाहदरा न मिला होऊं। अगर कभी बिन मिले आना पड़ा हो तो वे बहुत बिगड़ते और फिर उनका सामना करना मुश्किल पड़ जाता।

वत्स जी के व्यक्तित्व में अन्यान्य गुणों का समावेश था। वे कहा करते थे—परशुराम के कुल का ब्राह्मण हूँ। दुर्वासा से मिलता-जुलता। उनके हृदय में उभरते हुए साहित्यकारों के लिए विपुल स्नेह था। यह भी उनके स्नेह का ही प्रमाण था कि जब भी उन्हें यह मालूम होता कि मैं मनोहर लाल जी यहाँ ठहरा हूँ तो वे स्वयं मिलने के लिए बिना किसी का इन्तजार किए अथवा पूछे (सुभाष पार्क) मनोहर लाल जी के निवास पर पहुंच जाते। हिमाचली लेखकों का हालचाल पूछते। नए प्रकाशनों की सूचना व जानकारी लेते। साहित्यिक चर्चाओं, परिचर्चाओं का समा बंधता। वे भी, धूर्त और मूर्ख साहित्यकारों पर अपने अनुभवों की मुहर लगाते। फिर जोर की हँसी का फव्वारा छूटता।

वत्स जी का निजी जीवन खुली किताब था। आजकल के साहित्यकारों जैसी दकियानूसी विचारधारा उनकी न थी। वे अन्दर और बाहिर से एक जैसे थे। स्पष्टवादी व स्पष्टवक्ता वे इतने थे कि अपनी सही बात को सही साबित करना उन्हें बहुत अच्छा आता था। बहस के लिए बहस करना उन्हें पसन्द न था। सफेद कमीज पायजामे में वे धवल मनीषी से प्रतीत होते थे। पहाड़ी भाषा के उत्तरोत्तर विकास को देखकर

वत्स जी प्रसन्न थे, ऐसा पहले नहीं था। शिमला में विगत वर्ष एक पहाड़ी कवि सम्मेलन में पढ़ी गई कविताओं को सुनकर कहा था— 'हमारे पहाड़ी रचनाकारों को कथ्य व शिल्प में आशातीत सफलता हासिल हुई है। पहाड़ी की रचनाएँ अब किसी भी विकसित भाषा की रचनाओं से पीदे नहीं।' डॉ० मस्तराम कपूर जी भी तब उनके साथ थे। पहाड़ी की किसी भी बोली को केन्द्रीय मानकर उसके मानकीकरण के वत्स जी पक्षधर थे।

स्वामी मुक्तानन्द जी के प्रति वत्स जी पूरी तरह समर्पित थे। अपने निवास पर ही उन्होंने आश्रम जैसा वातावरण बना रखा था। दिल्ली में स्वामी जी का एक आश्रम था। मैं भी एक बार उन्हीं के पास ठहरा था। मनोहर लाल जी ने तय किया कि हम एक साथ गुरु जी के आश्रम चलेंगे। मुझे भी स्वामी मुक्तानन्द जी से दीक्षित होने की बात कही गई। वत्स जी ने रास्ते में बताया कि वे पहले किसी भी गुरु आदि में विश्वास नहीं रखते थे। पर स्वामी मुलानन्द जी ने उन्हें अत्याधिक प्रभावित किया है। शक्तिपात में उनकी दृढ़ आस्था थी। आश्रम से लौटने के बाद उन्होंने मुझे अपने पास से मुक्तानन्द जी का साहित्य पढ़ने को दिया। मुझे यह भी आदेश दिया गया कि घर लौटकर पुस्तकें पढ़ने के बाद जो भी अनुभूतियाँ अथवा चमत्कार होंगे उनकी सूचना पंडित जी को भेजूं। हुआ यह कि मुझे स्वामी जी की कृपा से ऐसी दिव्य-अनुभूतियों का स्फुरण हुआ कि मैं भी स्वामी मुक्तानन्द जी का शिष्य बन गया। हालांकि मैंने गुरु जी के दर्शन आमने-सामने कभी नहीं किए। परन्तु शक्पिात की दीक्षा से अवश्य उपकृत हो गया। वत्स जी बहुत प्रसन्न हुए थे जब मैंने अपने अनुभव दीक्षा उपरान्त उन्हें लिखे।

वेदों में पण्डित जी की गहन आस्था थी। वे वेदों के ज्ञाता थे। वैदिक व पौराणिक आख्यान सुनाना वत्स जी को प्रिय था। निर्भयता भी उनमें कमाल की थी। सही को सही व गलत को गलत कहने का उनमें साहस था। आत्मीयता भी उनकी स्मरण रहेगी। धर्मशाला में वे एक बार शायद दो वर्ष पूर्व राज्य के मेहमान बनकर आए थे। मैंने प्रार्थना की पंडित जी मेरे पास नहीं आएंगे क्या? उन्होंने डॉ० बंशीराम सचिव, भाषा, कला एवं संस्कृति अकादमी के साथ सुबह का खाना मंजूर कर लिया। दोपहर को अकेले आराम करते रहे। शाम उस दिन मेरे पास ही ठहरे। उन्होंने कहा—प्रत्यूष जी मुझे आपका निवास बेहद पसन्द आया है। बच्चों को भी उन्होंने बेहद प्यार दिया, ऐसा जैसा नाना अथवा दादा दिया करते हैं। बच्चों की साहित्यिक अभिरुचि को देखकर वे कह गए कि ढेर सारी पुस्तकें मैं दिल्ली से तुम्हारे पापा के पास पढ़ने को भिजवाऊंगा। मैं दिल्ली में गया भी, उनके पास ठहरा भी पर क्या मालूम था कि उनके पास मेरी यह आंखिरी मुलाकात थी। जिद्द करते रहे कि रात उनके पास रुकूं। सुबह बच्चों को ढेर सारी उनकी किताबें पढ़ने को ले जाऊं। जैसा उन्होंने वायदा किया था धर्मशाला के प्रवास में। परन्तु मेरी मजबूरी थी श्रीनगर में मासी जी की लड़की की शादी में पहुंचने की। उस मूसलाधार वर्षा में डॉ० मनोहर लाल जी को उन्होंने मुझे बस पर चढ़ा आने का अनुरोध किया। आज आखिरी मुलाकात याद आती है तो दिल तड़प उठता है। यह क्या मालूम था कि वत्स जी का हंसता-खिलता चेहरा आंखों से सदा-सदा के लिए दूर चला जाएगा। मेरी बिटिया अदिति ने जब अखबार में वत्स जी के निधन का समाचार पढ़ा तो चीखी—'पापा। यह वही वत्स जी है न जो हमारे घर आए थे। यह कहकर गए थे कि बहुत सारी पुस्तकें पढ़ने को भिजवाऊंगा। वही हैं वत्स न। डॉ० मनोहर लाल के श्वसुर व भावना के नाना। पापा अब आप पुस्तकें कैसे लाएंगे?' मुझे बेटी की बात को सुनकर काठ मार गया। उफ!वत्स जी नहीं रहे।

चम्बी की कहानी

हरिकृष्ण मुरारी

हिमाचल प्रदेश का कोई भी स्थान— नदी, नाला, मंदिर, घाटी ऐसी नहीं जिसके साथ कोई न कोई लोक विश्वास, घटना, कथा, गाथा आदि न जुड़ी हो। जब हम पठानकोट से धर्मशाला या काँगड़ा की ओर जाते हैं तो रास्ते में तैतालिस और चबालिस मील पर रैत तथा लदवाड़ा नाम के कस्बों के मध्य एक स्थान आता है 'चम्बी'। जहाँ एक या दो मिनट के लिए प्रत्येक बस रुकती है। इस स्थान का नाम पास बहती चम्बी खड्ड के नाम से ही पड़ा है। यह खड्ड एक छोटी सी खड्ड है। छोटे-छोटे नालों से बनी इस खड्ड का अपना ही अलग महत्व है। अपनी कथा एक अलग कहानी है। चम्बी से चार किलोमीटर की दूरी पर धर्मशाला को जाते हुए चड़ी नामक कस्बा आता है। यहाँ से उत्तर की ओर ५-६ किलोमीटर पैदल जाने के बाद एक छोटा सा भिल्लू नाम का गाँव आता है। बस इसी गाँव के पास से चम्बी खड्ड निकलती है। इस स्थान पर गोलूँ नाम की मिट्टी भी मिलती है। इस मिट्टी को लोग अपने कच्चे घरों की पुताई में सफेदी की जगह प्रयोग करते हैं। भितलू से निकल कर चम्बी खड्ड आगे ड्ढम्ब के नीचे से बहती है। यहीं खड्ड के दूसरी ओर सूहड़ी नामक गाँव है। ड्ढम्ब से आगे धनोटू गाँव आता है। आर-पार दोनों गांवों के बीच 'मट्टा' नामक स्थान आता है। यहाँ पर सूहड़ी की ओर से आता एक नाला मकोड़ी चम्बी के साथ मिल जाता है। दूसरे शब्दों में मट्टा, चम्बी और मकोड़ी का संगम है। इसी स्थान से संबंधित एक किंवदन्ती चम्बी के ही विषय में प्रचलित है :—

लगभग १०० वर्ष पूर्व की बात है। इसी मट्टा नामक स्थान पर एक महात्मा रहता था। उसके साथ उसका एक चेला भी रहता था। जब सभी लोग नींद में डूब जाते थे तो महात्मा चम्बी नामक चुड़ैल के साथ सारपाशा खेलता था। उनका यह खेल काफी समय तक चलता रहा। इसी बीच मणिमहेश की यात्राएं शुरु हो गईं। महात्मा भी मणिमहेश जाना चाहता था। उसने अपने चेले को समझाया कि वह शाम को जल्दी ही सो जाया करे तथा प्रातः ५ बजे से पहले कभी न उठे। उसने कुटिया के इर्द-गिर्द एक कार (रेखा) मंत्रित करके डाल दी और कहा कि वह रात को कभी भी इस रेखा के बाहिर न जाये। सब कुछ समझा बुझा कर वह मणिमहेश यात्रा पर जोत के रास्ते पैदल ही रवाना हो गया।

उसी रात चेला जल्दी ही भोजन करके सो गया। रात के लगभग दो बजे उसे नींद में मुर्गा बोलता सुनाई दिया। तभी उसकी नींद भी टूट गई। मुर्गा अब भी बोल रहा था। उसके पास घड़ी तो थी नहीं जिससे समय का पता चलता। अतः उसने सोचा कि सुबह हो गई है और मुझे उठ जाना चाहिए। ऐसा सोच कर वह उठ बैठा तथा अपना कमण्डल उठाकर नदी की ओर स्नान करने चल पड़ा। ज्यों ही वह नदी के पास पहुँचा— चम्बी ने उसे दबोच लिया। चम्बी के भयानक रूप को देखकर वह गुरू जी ! बचाओ ! बचाओ ! चिल्लाने लगा परन्तु निर्दयी चम्बी ने उसे मरोड़ ही डाला और वह वहीं मर गया।

उधर रात का जोत की चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते उसके गुरू ने अपनी दिव्य शक्ति से सब कुछ जान लिया और वह उसी समय लौट आया। वापिस आकर उसने देखा कि उसका चेला मर गया था। उसने उसका समाधि बना दी। जब रात हुई तो पहले की भान्ति चम्बी पुन: उसके पास सारपाशा खेलने के लिए आ गई। उसने उसी समय उसे दिव्य मन्त्र द्वारा वश में करके पहाड़ी के नीचे चट्टान से कील दिया। आज भी उस चट्टान पर उन कीलों के चिन्ह हैं तथा चिमटा भी साफ नज़र आता है।

'घनोटू' गांव के आगे थोड़ी दूर दूसरी ओर नौशहरा गांव के चरणों में लंजोत संगम पर एक और नाला इसमें आकर मिल जाता है। इस नाले को 'गड़प्पा' के नाम से जाना जाता है। मकोड़ी और गड़प्पा के मिल जाने से चम्बी एक छोटी सी खड्ड का रूप धारण कर लेती है। लंजोत संगम से लगभग ३०० गज की दूरी पर 'चम्बी' का पुल है। यह पुल अंग्रेजों के समय का बना हुआ है। प्रति वर्ष इस पुल से कोई न कोई वाहन अवश्य गिरता है। सरकार ने सभी पुलों का पुन: निर्माण करवा दिया परन्तु यह अभी भी उपेक्षित ही है।

यदि हम चम्बी पुल पर खड़े होकर उत्तर का दृश्य देखें तो बड़ा ही सुन्दर नज़ारा देखने को मिलता है। सामने धौलाधार की विशाल चोटियां तथा पहाड़ी पर स्थित धर्मशाला का नज़ारा। लहलहाते चीड़ के वन मन को मोह लेते हैं साथ ही दक्षिण की ओर जो मैदान है—वह भी अपने में एक विशेष आकार में प्रकृति द्वारा निर्मित यदि इसे हम प्राकृतिक स्टेडियम की संज्ञा दें तो असंगत नहीं होगा। यहाँ पर प्रति वर्ष कई प्रकार के खेलों का आयोजन होता है। गत १२ वर्षों से यहाँ राम लीला क्लब रैत की ओर से दशहरा भी मनाया जा रहा है। रावण और मेघनाद आदि के पुतले इसी मैदान में जलाए जाते हैं। जिसे देखने के लिए जब लोग चारों ओर सड़क पर खड़े होते हैं तो बड़ा ही मनमोहक दृश्य उपस्थित होता है। यदि हम पुल के दक्षिण की ओर देखें तो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ वृक्षों से ढकी दिखाई देती हैं। कुल मिलाकर चारों ओर का दृश्य पर्यटन की दृष्टि से बड़ा ही मनमोहक है। यहाँ से दो किलोमीटर की दूरी पर चम्बी खड्ड गज नामक खड्ड में मिल जाती है। कुल मिला कर यह ७-८ किलोमीटर लम्बी खड्ड है। इसका पानी घराट (पन्नचक्की) चलाने के उपयोग भी लाया जाता है साथ ही आस पास की थोड़ी सी भूमि की सिंचाई भी की जाती है। गत कुछ वर्षों से सरकार ने खजूरना नामक स्थान से इसके पानी से गाँव नेरटी में उठाऊ पन्न योजना का संचालन किया है। जो कि एक सराहनीय कदम है जिससे काफी शुष्क क्षेत्र में पानी पहुँचने लगता है।

इस चम्बी खड्ड के बारे में यहां के लोगों से कई कहानियां सुनने को मिलती हैं। जो यहां पर प्रस्तुत हैं। बहुत समय पहले की बात जब पठानकोट—कांगड़ा सड़क कच्ची हुआ करती थी और यहां टांगे एवं रेहड़े आदि ही इक्का-दुक्का चलते थे लोग अधिकतर पैदल ही यात्रा किया करते थे। कहते हैं—उन दिनों यह स्थान बड़ा ही भयानक सा लगता था। गर्मियों के दिनों में दोपहर के समय तो इस रास्ते से कोई भी आता जाता नहीं था। यही नहीं प्रत्येक ऋतु में अंधेरा होते ही आना जाना बिल्कुल ही बन्द हो जाया करता था। बताते हैं—इस स्थान पर चम्बी नामक चुड़ैल रहती थी। जो राह चलते लोगों को साक्षात मिल जाती थी। कई बार जब रेहड़ा या टांगा इस रास्ते से गुजरता तो एक खूबसूरत स्त्री उन पर चढ़ जाया करती थी। कई लोग तो उसे देखते ही डर जाया करते थे। उन दिनों इस खड्ड के किनारे पर जगह-जगह घराट चलते थे। घराट चलाने वाले बड़े निडर होते थे। उन्हीं दिनों की बात है कि गर्मियों के दिन थे और दोपहर का समय। घराटी अपने घराट में आटा पीस रहा था। उसी समय एक सुन्दर स्त्री ने घराट में प्रवेश किया। सिर पर उठाया हुआ थैला नीचे रखकर बोली—

इसे पीस दो' घराटी हुक्का पी रहा था। उसने हुक्का एक ओर रख दिया तथा उसका थैला थोड़ा खिसकाकर आगे करके कहा कि ठहर अभी पीस देता हूँ। जब उसने थैला हिलाया तो वह समझ गया कि इसमें कंकड़-पत्थर हैं। उसने ध्यान से उस स्त्री को देखा— जिसके उल्टे पैर तथा स्तन भी पीठ पर लटक रहे थे। वह जान गया कि यह चम्बी ही है और आज मुझे नहीं छोड़ेगी। उस स्त्री ने अपना थैला एक ओर खिसका दिया तथा स्वयं वहीं बैठ गयी। घराटी ने घराट बन्द कर दिया। आटा इकट्ठा करके थैले में डालकर एक ओर रख दिया। फिर उसका थैला उठाया और ओडी (जिसमें दाने पीसने के लिए डाले जाते हैं। यह घराट के ऊपर एक बाँस से बनी हुई टोकरी जो ऊपर से चौड़ी व नीचे से सिकुड़ी हुई होती है।) में डाल कर स्त्री से बोला—''मैं पानी छोड़ता हूँ तुम कीली (घराट की धूरी होती है जिससे घराट चलता है।) पकड़ो। घराटी के कहने से उसने कीली पकड़ ली। घराटी झट बाहर निकला तथा एकदम घराट पर पानी छोड़ दिया जिससे घराट चल पड़ा और वह भाग गया। पानी छोड़ते ही घराट चल पड़ा तथा कीली के साथ वह स्त्री भी घूमने लगी। स्त्री बनी चम्बी चिल्लाने लगी—यदि इसका मुझे पहले ही पता होता तो आते ही भक्ष लेती। अन्ततः वह चिल्लाती हुई दूर भाग गई।

इसी प्रकार एक और घटना भी है—आज से लगभग ८०-९० वर्ष पहले की बात है। जहाँ इस समय चम्बी का पुल है, वहाँ साथ वाले मैदान के उत्तर में सड़क के साथ नीचे श्मशान घाट भी है। इसी के पास से एक 'कूल' बहती है जो मैदान के किनारे-किनारे बहती हुई लगभग २०० गज की दूरी पर चम्बी खड्ड में जा मिलती है। अब इसमें केवल चश्मों आदि से ही निकलने वाला पानी बहता है। लेकिन पहले यह कूहल गड़प्पा नाले से निकलती थी। समय के बहाव के साथ-साथ नाला गहरा होता गया अन्ततः कूल टूट गई। इसी कूल पर श्मशान घाट के पास एक घराट था। बात इसी घराट की है। रात का समय था। पीसने के लिए बहुत दाने थे इसलिए घराट राते को भी चल रहा था। रात को १२ बजे एक बहुत ही सुन्दर स्त्री ने घराट में प्रवेश किया। घराटी निडर था। वह जान गया कि वह कोई मायावी स्त्री है। जब उसने प्रवेश किया तो वह हुक्का पी रहा था। घराट में प्रवेश के बाद वह बैठ गई और एक पोटली सी निकाल कर उसे देते हुए बोली—''मैं चम्बी हूँ। इस समय मेरी बहिन बनोई के लड़के की शादी है। मैं किसी कारणवश वहाँ नहीं जा सकती। शगुन भी जरूर भेजना है। अतः आप मेरा यह काम कर दो। आपके सारे आटे को मैं पीस दूंगी।''

उसकी बात सुनकर निडर घराटी ने कहा कि काम तो मैं कर देता हूँ परन्तु रात अंधेरी है। मैं वहाँ तक कैसे पहूँचुंगा ?

उसकी बात सुनकर उस स्त्री ने उसे एक छोटी सी लकड़ी देते हुए कहा—''इसे कान पर रख लो। इससे तुम्हें दिन की तरह ही दिखाई देगा और हाँ, वहाँ पर अनेक प्रकार के पकवान बने होंगे। तुम्हें वे बहुत विवश करेंगे परन्तु तुम कोई भी वस्तु मत खाना। बाँध कर ले आना। डरना भी मत। वह तुझे कुछ नहीं कहेंगे।''

इतना कहकर वह चुप हो गई और घराटी शगुन की पोटली उठाकर लकड़ी को कान पर रखकर बनोई की ओर चल पड़ा। सचमुच उसे दिन जैसा दिखाई देने लगा। लगभग पौना घण्टा चलने के बाद वह बनोई पहुँच गया। जहाँ अब बनोई का पुल है के पास पहुँचकर सोचने लगा कि अब किस ओर जाया जाए। तभी उसे उत्तर दिशा की ओर शहनाईयों तथा अनेक प्रकार के बाजों के बजनें की आवाजें सुनाई देने लगी। वह धीरे-धीरे उस ओर चल पड़ा। थोड़ी देर बाद वह वहाँ पहुँच गया। वहाँ पर उसका काफी आदर-सत्कार हुआ। उसे भोजन

करने का सबने बहुत ज़ोर लगाया परन्तु उसने एक बार जो मना किया-उसी को ही दोहराता रहा। अन्ततः उन्होंने उसे सारे पकवान दो जगह डाल कर एक कपड़े में बाँध दिए। उसने भी चम्बी द्वारा भेजा हुआ शगुन उन्हें दिया तथा उन द्वारा दी गई वस्तुएं ली और उनसे विदा लेकर लौट आया। लगभग चार बजे प्रातः वह अपने घराट पर पहुँचा। आकर देखा तो सारा आटा पीसा जा चुका था और चम्बी वहाँ बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने सारा सामान उसे दे दिया। चम्बी ने थोड़े-थोड़े सारे पकवान एक पत्तर में डाले और उसे देते हुए कहा कि इन्हें खाना नहीं, प्रातः देखना। अब मैं चली। इस काम के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। आज के बाद तेरे इस घराट में कोई अप्रिय घटना नहीं घटेगी। अब आप मेरी लकड़ी को दे दो तथा वह लकड़ी लेकर अदृश्य हो गई।

प्रातःकाल उसने पकवान देखा—वह तो रेत-सेबाल आदि था। यदि रात को वह उसे खा लेता तो सचमुच वह भूत बन जाता। इसी प्रकार की अनेक घटनाएं इस खड्ड के साथ जुड़ी हुई हैं। आज से ३० वर्ष पहले यहाँ डर लगता था परन्तु आज वह सारा भय लुप्त हो गया है। अब तो चम्बी पुल के दोनों ओर दुकानें खुल गईं हैं। जिससे दिन भर काफी रौनक रहती है। लोग एक बस से उतर कर दूसरी पर चढ़ते हैं। दो घड़ी बैठ कर चम्बी के मनमोहक दृश्य का आनन्द उठाते हैं। जब बरसात होती है तो यह आनन्द और भी बढ़ जाता है।

(पृष्ठ ६३ का शेष)

की सुन्दर मूर्तियां बनाई गई हैं। 'नीणू' में नारद जी के मन्दिर में लगे वाह्य भाग में लगे तख्तों पर विभिन्न प्रकार की फूल-पत्तियां एवं चक्र आदि उकेरे गए हैं। गुम्बज एवं पैगोडा शैली के मन्दिरों में जहां इन चित्रों की क्लिष्टता दिखाई देती है, वही देशज शैली के मन्दिरों में आधुनिक सामान्य शैली की चित्रकारी दृष्टिगोचर होती है। कुल्लू में मन्दिरों एवं राज महलों की चित्रकारी का विकास मुख्यतः राजा जगत सिंह (१६३७-९२ ई०) के समय में हुआ। विभिन्न स्थानों पर बने मन्दिरों में भी यह कला समग्र कुल्लू प्रदेश में पनप कर अधिक लोक प्रिय हुई। मुख्यतः यह शैली कांगड़ा की चित्र कला से प्रभावित है। कुछ भी हो ये आंचलिक चित्र एवं भित्ति-चित्र-शैलियां मूलतः संस्कृति के अमूल्य पहलू हैं, जिसमें लोक समाज की समग्र भावनाओं का समावेश अनायास हो जाता है।

(पृष्ठ ७२ का शेष)

कहती है कि आज के बाद शायद मैं दुबारा तुम्हें कभी नहीं मिल पाऊंगी इसलिये तुम जैसे-तैसे जो लेना और तुरन्त आंसू बहाती हुई बहुला जंगल की तरफ प्रस्थान करती है। व्याघ्र बहुला के इन्तजार में बैठा होता है। जैसे ही बहुला व्याघ्र के पास पहुंचती है उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता और उससे पूछता है कि कोई भी प्राणी जो इस संसार में जन्मा है, मौत से डरता है परन्तु तुमने ऐसा क्यों किया? बहुला बहुत ही विनम्र भाव से कहती है कि शरीर नश्वर है यदि किसी भूखे के काम आ जाये तो इससे बड़ा क्या सौभाग्य हो सकता है। कहते हैं व्याघ्र जैसे ही गाय को मारने के लिये झपटा तो वह ज़मीन पर गिर पड़ा और गाय के शरीर का स्पर्श करते ही राम-राम कहता हुआ उठ खड़ा हुआ तथा मनुष्य की योनि को प्राप्त हुआ। अतः व्याघ्र के मनुष्य बनते ही वह बहुला के चरणों में गिर पड़ा और मोक्ष को प्राप्त हुआ। कहते हैं उसी दिन से आज तक ज़िला मण्डी की सभी नारियां अपनी औलाद की खुशी और सम्पूर्णता के लिये इस व्रत को रखती हैं।

कोटगढ़ क्षेत्र में प्रचलित विवाह गीत

विमला मेहता

कोटगढ़ में 'लाणे' विवाह में गायी जाती हैं स्थानीय भाषा में लाणे का अर्थ है— विवाह गीत।यहाँ विवाह कैंची लगने से शुरु होता है। मामा जी विवाह में दुल्हा-दुल्हन को वस्त्र, एवं अन्य उपहार लेकर आते हैं। लग्न में पहने जाने वाले वस्त्र मामा जी ही लाते हैं। विवाह से दो-तीन दिवस पूर्व कपड़े सिले जाते हैं और दर्जी बिठाया जाता है, उस समय निम्नलिखित गीत गाये जाते हैं:-

पहलो नाँव लाणो श्री भगवानो,
जोई होदो सोबा नी का बोड़ो।
तेबे नाँव लाणो अष्टाकुड़ी देवाले,
जेई होदें सोबा नी का बोड़े।

अर्थात् पहला नाम इस विवाह संस्कार के प्रारम्भ में श्री भगवान का लिया जा रहा है क्योंकि यही सबसे श्रेष्ठ हैं। फिर अपने कुल के देवताओं का नाम लिया जाना चाहिए क्योंकि यही सबसे श्रेष्ठ हैं।

तेबे नाँव लाणो जागा ऐया माटीयो,
जोई होंदे सबा नी का बोड़े।

फिर इस जगह या स्थान और मिट्टी (पृथ्वी) का नाम लगाना है क्योंकि यह भी सबसे महान् या श्रेष्ठ हैं।

तेबे नाँव लाणो कूपा केरो मिण्डको,
एउ बिनी कूपो दिशा सूनो।

फिर कुएँ के मेंढक का नाम लगाना चाहिए क्योंकि इसके बिना कुआँ सुनसान हो जाता है।

तेबे नाँव लाणो ऐया गारीयारो,
जोई होदी सोबा नी का बोड़ी।

इसके पश्चात् इस मिट्टी का नाम लेना चाहिए जिसने कि हमें उत्पन्न करके पाला है यही सबसे बड़ी भी है।

हाथड़ू जोड़ा ए ए बेटो कंवारो,
मेरे नारायणा रखया कोरे।
बेदियो आणो ए ए इन्द्र मामू,
जोई आणा लग्ना ले चोड़ू।

अब लड़का या लड़की भगवान से हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे नारायण ! मेरी रक्षा करना। इन्द्र को यहाँ मामा कहा गया है। हमने इन्द्र मामा को विवाह के लिए आमन्त्रित किया है क्योंकि वही लग्न के लिए चोड़ी या वस्त्र लायेंगे। इस क्षेत्र में यह प्रथा है कि विवाह में जो भी वस्त्र लड़का या लड़की पहनते हैं उन्हें उनके मामा ही लाते हैं। यथा :—

केउ बाजारा का चोडू आणो कापड़े, के आणो नगरी ओ सोई।
नगरे बाजारा का चोडू आणो कापड़ो, मथुरा आणी नगरी ए चोड़ी।

मामा जी के पहुंचने पर लड़का या लड़की प्रश्न करते हैं कि आपने किस बाज़ार से यह चोली और वस्त्र लाये हैं और कौन सी नगरी का दर्जी लाया है? मामा जी उत्तर देते हैं कि नगर के बाज़ार से मैंने यह चोली और वस्त्र लाये हैं और मथुरा नगरी से दर्जी साथ लाया हूँ। :—

कीजू केरी सिउणा सोइया, कीजू होदों केरो धागो।
सोना केरी सिउणा सोइया, मीना होदों रेशमो धागो।

दर्जी के आने पर उससे पूछा जाता है कि तुम्हारी सुई किस चीज़ की बनी है और तुम कौन सा धागा इन कपड़े सिलने के लिए लगा रहे हो? दर्जी कहता है कि मैंने सोने की सुई लायी है और बारीक रेशमी धागे से मैं वस्त्र सिल रहा हूँ। वस्त्रों को कैंची लगाते समय निम्नलिखित गीत गाए जाते हैं। ये गीत प्रतिदिन गाये जाते हैं। इन्हें मंगलगीत कहा जाता है।

जागे-जागे ए ए मेउणा तारेया,
होयी गई रैणा भयाणा।
जागे-जागे ए ए जागा माटीए,
होयी गई रैणा भयाणा।
जागे-जागे ए ए पांजा भाई पाण्डवा,
होयी गई रैणा भयाणा।

उषाकाल होने पर जो विवाहगीत गाये जाते हैं उनमें सभी को जागने के लिए कहा गया है। सर्वप्रथम ध्रुव तारे से विनती की गयी है कि जागो और देखो रात्रि बीत चुकी है और सुबह हो गयी है। इसी प्रकार इस मिट्टी पृथ्वी से जागने को कहा गया है। विवाह गीतों में पाण्डवों का भी वर्णन हुआ है। यहाँ उन्हें भी जागने को कहा गया है।

जागे-जागे ए ए सात भाई सूरजा,
होयी गई रैणा भयाणा।
जागे-जागे ए ए चाँबिए कुखड़ू आ,
होयी गयी रैणा भयाणा।
जागे-जागे ए ए काड़ी बिल्लिए, चाँबी लादी कूखड़ू ए थापा।

इसके पश्चात् सात भाई सूरज को जागने को कहा गया है अर्थात् यहां सुबह होने पर सूरज के उदय होने का संकेत दिया गया है। फिर मुर्गे को जागने को कहा गया है। अर्थात् सुबह होने पर मुर्गे की बांग का स्पष्ट संकेत है। तत्पश्चात् काली बिल्ली को कहा गया है कि उठो और मुर्गे को भी जगाओ। रात खुल गयी है।

कुखड़ू न मारे काड़ी बिल्लिए,
जोई होदो मेणु केरो गोपी।
वसु धुँदुड़ माइये, नेरी हेरे डोबड़िए गोटी।
छुरी ता पोड़ी माइये पाँजरे, गाशा पोड़ी बदरा शिला।

यहाँ बिल्ली से कहा जाता है कि तुम मुर्गे को जगा कर मारना मत क्योंकि यही सुबह जगाने वाला है। इसके बाद श्री कृष्ण जी के जन्म का वर्णन किया गया है। उनके जन्म से पूर्व वसुदेव और देवकी को अंधेरे कारागार में बन्द किया गया था। उस समय उसे ऊपर से बहुत भारी शिला से ढक दिया गया था।

जागे-जागे वसु बाम्णा,
मेरे लागी कानडू ए कनशूड़ा।
शूड़ा ता लागी मेरे शोड़नी,
कानड़ ए लागी कनशूड़ा।
ओदरू भीतरा बोला बालका,
डाई गजा मलमला छूटे।
डाई ता गजा घूटे मलमला,
काना बीथी जन्मा लेणा।

देवकी वसुदेव को कहती है कि हे ब्राहमण!जागो मेरे कान में पीड़ा हो रही है। पीड़ा और दर्द तो सारे शरीर में हो रही है लेकिन कान में बहुत ही दर्द हो रहा है। तभी कोख से बच्चे की आवाज़ आती है कि अढ़ाई गज मलमल घूटो। श्रीकृष्ण ने जब जन्म लिया था तो देवकी ने अढ़ाई गज मलमल घूटा था और बच्चे ने उस कपड़े की धोती पहन कर जन्म लिया था। यह भी कहा जाता है कि श्रीकृष्ण ने कान से जन्म लिया था।

चोर कीनारे बोड़े दीये,
फूटी गई बदरा शिला।
जागे-जागे बसु बाम्णा, भगवान पैदा हुए।
घूघलू ता जागे माइचे बागलू,
भगवान पैदा हुओ।
साँचो ता बाँचे आपणी पत्री,
के घड़ी दी बालको जन्मा हुओ।
भौद्रो मीनो जन्माष्टमी,
रोणी नक्षत्र बुधवार।

श्रीकृष्ण के उत्पन्न होते ही चारों किनारे दीये जल गये और ऊपर पड़ी शिला फूट गई। फिर देवकी श्रीकृष्ण के पैदा होने का समाचार वसुदेव को सुनाते हुए कहती है कि जागो और देखो भगवान् पैदा हो गये हैं। भगवान् के पैदा होने का समाचार सुनते ही सारे पहरेदार जाग गये और अचम्भित से खड़े हो गये। सभी पुरोहितों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि अपनी-अपनी पत्रियाँ देख लें कि बालक कौन सी घड़ी में जन्मा है। फिर पुरोहित कहते है कि भाद्रपद मास को जन्माष्टमी को रोणी नक्षत्र में बालक ने जन्म लिया है। उस दिन बुधवार था।

नेदिये हुए मेरे कोयला धर्मा,
बालका दे गोकुला ले पजेउए।
सोनो न मिलदो हल बाइयो,
मोतिए न लागदे डाड।
कर्म न मिलदे माइये बाँटियो,
पुत्रा न मिलदे दुधार।

जागे-जागे बसु बाम्णा,
बालका दे गोकुला ले पजेउए।
गंगा ता बोला आगे जमना,
भगवान दर्शना लेणे।
गोडा ता तोई गंगा बोई जमना,
गोड़ा उब्बी जंपरा कूड़ी।

देवकी कहती है कि नदी के किनारे मैंने यशोदा से वचन लिये थे कि वह मेरे पुत्र का पालन करेगी। अत: तुम इस बालक को गोकुल पहुंचा दो। वह आगे कहती है कि हल चलाने से कभी सोना नहीं मिलता और मोतियों के पेड़ नहीं होते। कर्म कभी बाँट कर नहीं मिलते और पुत्र कभी उधार नहीं मिलते। फिर वह वसुदेव से कहती है कि इस बालक को गोकुल पहुंचा दो। वसुदेव श्रीकृष्ण को सिर पर उठाकर गोकुल को प्रस्थान करते हैं। रास्ते में गंगा और यमुना नदियाँ भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन को उत्सुक खड़ी हैं। वे वसुदेव के गले तक ऊपर चढ़ आती हैं। तब डरकर वसुदेव कह उठते हैं कि गले तक तो गंगा और यमुना बह ही रही हैं यदि ये और ऊपर सिर तक पहुंच गई तो मेरी मृत्यु निश्चित है। कहा जाता है कि तब वसुदेव ने श्रीकृष्ण को उठाकर नीचे रख दिया था और गंगा व यमुना ने उनके दर्शन करके उन्हें रास्ता दे दिया था।

है लग्गे छोड़ुए काव डोती गा। बेड़ी गाणे आड़ी लग्गो दूजी होआ।

सॉयकाल गाये जाने वाले मंगलगीत :

एक जती होदों कुएँ केरो मीड़को,
एठ पोरू जती नई कोई।
दूजो जती होदों मोर कड़ाई,
एठ न दैंदो, हे राम्मा
चन्द्रा एठ बिना बागा गोंदी शूनी।
के जती माँगा के जती देउ, घोरे जती लक्ष्मणा भाई।
ताई बोलू लक्ष्मणा भाईया, सोची भाईया जती होदों तू सोची।
बारह बोरसे सीये सूतो मोठड़े, जत भाईया आपणो नई हारो।

सॉयकाल के विवाह गीत में कुएँ के मेंढक को कहा गया है कि वह ब्रह्मचारी है क्योंकि उसके बिना कुआँ सूना हो जाता है। फिर कलगी वाले मोर को भी ब्रह्मचारी कहा गया है। यहाँ राम को सम्बोधित किया गया है कि मैं इसे नहीं दे सकता क्योंकि इसके बिना बाग सूना हो जाती है। फिर कहा गया है कि क्या चीज़ तुम माँगते हो और मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ। तुम्हारे तो अपने ही घर में लक्ष्मण भाई ब्रह्मचारी है। राम लक्ष्मण से कहते हैं तू सचमुच में आत्मसंयमी और ब्रह्मचारी है। बारह साल तक सीता के चरणों में सोने पर भी तूने अपना जत नहीं हारा।

चानणी लाये बाबुआ मेरिया,
मेरे जाणो बिंदरे बोणे।

बिंदरे बोणो बेटया जाई नई सोकदो,
जाणो पोड़ो शाउरिये घोरे।
शाउरिये घोरे मेरे नई जाउणो,
मेरे रेणो उमरा कवारे।

बेटा अपने पिता से कह रहा है कि मुझे चाँदनी कर दो। मैंने बिन्दरा वन जाना है। पिता उत्तर देते हैं कि बेटा तुम बिन्दरा वन नहीं जा सकते क्योंकि तुम्हें ससुराल जाना है। बेटा पिता की बात काटकर कहता है कि मैंने ससुराल नहीं जाना और सारी उमर कुँवारे रहना है।

लड़की के घर में गाये जाने वाले विवाहगीत

कोसरे घोरे लागे सोहड़े बादाउड़े।
कोसे घोरे ही बाँडी दारूबा।
बाबुए घोरे लागे सोहड़े बादाउड़े।
बेटी घोरे होरे बाँडे दारूबा।
कुणीए धरी ए कूँगू ले केसरा।

कुणी धरी हरी दारूबा।
सीये धरी कूँणू केसरा।
रामे धरी हरी दारूबा।
हरी दारूबा आणी कुन्ता माइये बाणा का,
रूँबी डाओ गोरजे छारे।

यहाँ कहा जा रहा है कि किसके घर में रंग-बिरंगे फूलों से सजावट हुई है और चहल-पहल है। किसके घर में हरी दुवा घास बाँटी जा रही है। यह घास पवित्रता की सूचक है। इसका उत्तर यह है कि बापू जी के घर में चहल-पहल और सजावट हुई है और बेटी के घर में हरी दुवा घास बाँटी जा रही है। कूँगू और केसर किसने धारण की है और हरी घास (दुवा) कौन लगा रहा है। सीता जी ने कूँगू और केसर धारण की है और राम जी ने दुवा घास लगाई है। हरी दुवा घास कुन्ती माँ के बाग से लायी गई है यहाँ कहा जा रहा है कि इस दुवा को घर के दरवाजे के सामने लगा दो या इसकी रूपाई कर दो। कोटगढ़ में शादी से पहले दिन दुवा उठाते हैं अर्थात् हरी घास लाकर पूजा के चौके में रखते हैं। इस समय कुल-पुरोहित हवन करते हैं। इस हवन को करते हुए यह विवाह गीत गाने की प्रथा है। दुवा उठाते हुए भी गीत गाए जाते हैं।

पान से पतली नौ रंगिये,
आपणे बाबू से वर माँगीए।
मैं तो जाऊँ बाजार में, अपनी बेटी को वर ढूंढणे।
मैं तो जाऊँ बेटीए वर ढूँढणे, तें कर लेई हारा श्रृंगार।
वन फूले वन राहीया,
किस वन फूले आ रे नौ रंग बेला।
कन्या जन्मी एक रुक्मिणी,
वने फूले वन राहीया,
मधुवने फूला रे नौ रंग बेला
चंगा वर टोडे मेरे बाबू जी,
मन मेरा खुश रहे।
चंगा वर टोड़े मेरी अम्मा जी,
जुण होदों भूमिया दो चांगो।

यहाँ पान से भी पतले नौ रंग के कपड़े को रंग दिया गया है और लड़की से अपने पिता से वर माँगने को कहा गया है। लड़की की बात सुनकर पिता कह रहे हैं कि मैं बाजार या दूसरे शहर में अपनी लड़की को वर तलाशने जा रहा हूँ। बेटी को वर ढूंढने को जाने पर वह बेटी को हार-श्रृंगार करने को कहते हैं।

राह में उन्हें देखकर लोग कह रहे हैं कि हे राही! वन में तो सब जगह फूल खिले हैं लेकिन यह नौ रंग की बेले कौन से वन में लिखी हैं। रुक्मिणी नाम की कन्या ने जन्म लिया है। सब वनों में तो फूल खिले है लेकिन मधुवन में नौ रंग की बेलें खिली हैं। फिर लड़की अपने पिता से कहती है कि मुझे ऐसा पति ढूँढना जिसके साथ में प्रसन्न रह सकूँ और जो खूब भूमि का मालिक हो।

मेंहदी लगाते समय गाये जाने वाले मंगलगीत

शिरु शाँखड़ो पाणी चरेबड़ो,
पाँजा पाँडबे खेती खोटी,
कुन्ता माइये डाड़ी रुँबी,
डाड़ी केरी बूटिये,
चालो रामा का मेंहदी लगायी ए।
दाँतुए पाटड़े ए खोड़े होये बाबुआ,
बेटये (बेटीए) हाथे मेंहदी सजाउये।
आँगणे आपणे ए खोड़े होये अम्मिए,
बेटये (बेटिए) हाथे मेंहदी सजाऊये।
दाँतुए पाटड़े ए खोड़े होये भाईया,
बेणीए हाथे मेंददी रचाउये।
आँगणे आपणे ए खोड़े होए भाभीए,
ननदिये हाथे मेंददी सजाउये।
दातुएँ पाटड़े ए खोड़े होये दाइये,
चेइये हाथे मेंददी रचाउये।

यहाँ मेंहदी लगाते हुए पाँच पाण्डवों और उनकी माता कुन्ती का वर्णन किया गया है। इन्द्रप्रस्थ में पाँच पाण्डवों ने धरती या भूमि खोदी और सिंचाई की तब माता कुन्ती ने दुवा घास और अनाज की रुपायी की। उस डाली से जो पौधा बना उससे हम राम (लड़का) या सीता (लड़की) के हाथ में मेंहदी लगाते हैं। घर के एक कोने पर खड़े हो कर पिता से बेटी के हाथ में मेंहदी लगाने को कहा गया है। इसी प्रकार माँ से आँगन में खड़े होकर बेटी के हाथ में मेंहदी लगाने को कहा गया है। इसी प्रकार भाई, भाभी चाचा, चाची, ताया, ताई, बुआ, मामा, मासी मौसा, बहन, बहनोई आदि को सम्बोन्धित करके मेंहदी लगाने को कहा जाता है।

मेंहदाड़ी-मेंहदाड़ी पहले मेंहदी, कुणीए सजाउयी, पहले मेंददी कुणीए सजाउयी।
जेबी रामे सीया सोंगे लाँवेदीने, तेबी रामे मेंहदी सजाउयी-२।
जेबी कृष्णे रुक्मिणी सोंगे लाँवे दीने, तेबी तीने मेंहदी सजाउयी-२।

यहाँ कहा जा रहा है कि इस संसार में सबसे पहले मेंहदी किसने रचाई होगी। इस मंगलगीत में यह भी कहा है कि जब राम-सीता ने लगन लिये तब उन दोनों ने मेंहदी रचाई। इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाह हुआ तब उन्होंने मेंहदी रचाई। शिव-पार्वती को सम्बोन्धित करके भी मेंहदी रचाने की बात दोहराई जाती है। मेंहदी लगने के पश्चात् हमारे कोटगढ़ में मेहमान एवं मामा जी खूब बाजे आदि के साथ आते हैं। तत्पश्चात् दुल्हे को पारम्पारिक वेशभूषा में सजाया जाता है और कन्यापक्ष की ओर प्रस्थान किया जाता है। वहाँ पर परम्परा के अनुसार सभी रस्में पूर्ण की जाती हैं और फिर वर-वधू को लेकर अपने घर आता है। विवाह की अन्य रस्में वर के यहाँ पूर्ण की जातीं है और विवाह समाप्त हो जाता है।

हिमाचल अकादमी की गतिविधियां

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी द्वारा केन्द्रीय ललित कला अकादमी, दिल्ली के सहयोग वाई.डब्ल्यू.सी.ए. हॉल, शिमला में दिनांक २० से २२ दिसम्बर, १९८९ तक चित्रकला प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसमें हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों के कलाकारों की लगभग ५२ कलाकृतियां प्रदर्शित की गईं, जिनमें पहाड़ी चित्र, पोर्टरेट, पोस्टर, कार्टून ड्राइंग, फोटोग्राफ, मूर्तियां आदि सम्मिलित हैं।

अकादमी के सचिव डॉ० बंशीराम शर्मा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि अकादमी के इस वर्ष के निष्पादन तथा ललित कलाओं के आयोजनों की एक लम्बी श्रृंखला है। इस वर्ष जून माह में अकादमी द्वारा शास्त्रीय संगीत कार्यशाला का आयोजन शिमला में किया गया जिसमें विश्वविख्यात संगीतकार प्रो० देबू चौधरी तथा श्री एल.के. पण्डित ने प्रशिक्षण दिया। संगीत कार्यशाला के पश्चात् पश्चिम क्षेत्र संस्कृति केन्द्र के सहयोग से अकादमी द्वारा एक मुखौटा कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में प्रदेश के मुखौटा कलाकारों ने मुखौटों का निर्माण किया जिसकी शिमला में ही नहीं अपितु देश के समाचार पत्रों में समीक्षा हुई। इसके पश्चात् पश्चिम क्षेत्र संस्कृति केन्द्र तथा अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में 'बाल नाटक शिविर' का आयोजन किया गया। मानव सर्वेक्षण विभाग भारत सरकार के सहयोग से अकादमी द्वारा शिमला में 'हिमाचल प्रदेश के लोग' विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। उन्होंने बताया कि महानिदेशक, मानव सर्वेक्षण विभाग, भारत सरकार से एक पत्र प्राप्त हुआ है जिसमें उन्होंने लिखा है मार्च या अप्रैल मास में शिमला में 'महाभारत के लोक रूपक' विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित करने का प्रस्ताव है इस सम्बन्ध में अकादमी ने अपेक्षित सहयोग की स्वीकृति भेज दी है। गत दिनों समाचार पत्रों के माध्यम से आप लोगों को पता लगा होगा कि देश के अन्य प्रदेशों में भी हिमाचल के कलाकार किसी भी रूप में अपने कलाकृतियों के माध्यम से दर्शकों को मन्त्रमुग्ध करने में सक्षम है। दिनांक १२ से १५ दिसम्बर, ८९ तक चण्डीगढ़ में पंजाब ललित कला अकादमी के सहयोग से अकादमी द्वारा कला प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। रूपांकन कलाओं में चित्रकला मूर्तिकला तथा कलाओं की अन्य विधाओं के रुपए ३१००/- (तीन हजार एक सौ रुपए) मात्र के तीन पुरस्कार दिए जाने का निर्णय इस वर्ष से हुआ है।

दिनांक २० दिसम्बर, १९८९ को कला गोष्ठी का आयोजन भी किया गया। गोष्ठी की अध्यक्षता प्रो० एच.के. भारद्वाज ने की जो हिमाचल प्रदेश के केन्द्रीय ललित कला अकादमी में प्रतिनिधि और हिमाचल के प्रसिद्ध मूर्तिकार है गोष्ठी में लगभग कला समीक्षकों, कलाकारों तथा कलापारखियों ने भाग लिया। गोष्ठी का विषय 'हिमाचल प्रदेश की रूपांकन कलाएं—विकास यात्रा की समीक्षा' था। चर्चा में भाग लेने वाले विद्वान कलाकारों में श्री हरिश्चन्द्र राय, श्री ओ.पी. टॉक, श्री अजीत सिंह, श्री सनत कुमार चटर्जी, श्री जयदेव गुप्ता कुमारी सुनीता वालिया श्री रविन्द्र कश्यप, श्री सुरजीत सिंह, श्री आर.के. मेहता, प्रो० के.के. किदवई, श्री.एस. मलंहस, श्री हेम प्रकाश, अरुण तोमर आदि सम्मिलित हैं।

– सोमसी

विद्वानों का मत था कि भाषा एवं संस्कृति और हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी द्वारा ललित कलाओं के संरक्षण व सम्वर्द्धन पर विशेष ध्यान दिया जाए। समस्त विद्वानों ने इस बात पर बल दिया कि अकादमी द्वारा शिमला व अन्य ज़िला मुख्यालयों में कला-क्लबों की स्थापना की जाए तथा कला क्लबों में कलाकारों के पठनार्थ कला सम्बन्धी पत्रिकाओं को उपलब्ध करवाया जाए। श्री ओ.पी. टॉक का कहना था कि चित्रकला प्रदर्शनी का आयोजन शिमला के अतिरिक्त हिमाचल के अन्य क्षेत्रों में भी किया जाए।कलाकारों ने सुझाव दिया कि पारम्परिक चित्रकला के शिक्षण की व्यवस्था को स्नातक स्तर पर किया जाए।यह भी सुझाव दिया कि ज़िला स्तर कला विकास अधिकारी के पदों का सर्जन किया जाना चाहिए। प्रदेश के कलाकारों द्वारा कला सम्बन्धी संस्थाओं के गठन के सम्बन्ध में विचार भी व्यक्त किया गया।

पंजाब ललित कला अकादमी द्वारा शिमला में आयोजित चित्रकला प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए श्री सी.आर.बी. ललित निदेशक (भा.सं.) हि०प्र०

प्रदर्शनी का उद्घाटन दिनांक २० दिसम्बर, १९८९ को प्रातः ११.०० श्री सी.आर.बी. ललित, निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग ने किया। इस अवसर पर उन्होंने बोलते हुए कहा कि विश्वविद्यालय में निष्पादन व रूपांकन कला संभाग की स्थापना तथा जून मास में ज्यूरिक (स्विरजरलैंड) में आयोजित होने वाली 'पहाड़ी चित्रकला प्रदर्शनी' आयोजित की जाएगी। इस प्रदर्शनी में पहाड़ी चित्रकला की करीब १०० कलाकृतियां तथा यूरोपीय देशों के विभिन्न सग्रहालयों में संग्रहित भारत की लगभग २०० कलाकृतियां प्रदर्शित की जाएंगी। कलाकृतियों की खरीद के सम्बन्ध में जानकारी देते हुए उन्होंने बताया कि अकादमी द्वारा प्रदेश के एक कलाकार की रुपए ३०००/ (तीन हजार रुपए) तक की कलाकृति की खरीद की जाती है।अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रो० एच.के. भारद्वाज ने सुझाव दिया कि पारम्परिक पहाड़ी चित्रकला के विकास के लिए प्रत्येक ज़िला के कम से क्रम दो कला अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्होंने बताया कि ललित कला अकादमी की ओर से आयोजित की जाने वाली प्रदर्शनियों में पारम्परिक पहाड़ी चित्रकला के चित्रों को भी सम्मिलित किए जाने का निर्णय हुआ है।

'हिमाचल के लोग' पर सेमिनार

भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण विभाग भारत सरकार और हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में ग्रैण्ड होटल शिमला में २६ से २७ अक्तूबर १९८९ तक 'हिमाचल के लोग' विषय पर दो दिवसीय सेमीनार का आयोजन किया गया। जिसका उद्घाटन डॉ० के.एस. सिंह, महानिदेशक, मानव विज्ञान सर्वेक्षण विभाग, भारत सरकार ने किया। उन्होंने बताया कि इस कार्य में पिछले ४ वर्षों से ३०० विद्वान् देश में कार्यरत हैं। इस अवसर पर डॉ० आर.एस. मान संयुक्त निदेशक, भारतीय मानव सर्वेक्षण विभाग, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र देहरादून ने 'भारत के लोग' परियोजना के संबंध में तथा उसके उद्देश्य से परिचित कराते हुए बताया कि २ अक्तूबर १९८५ को इस कार्य का आरम्भ किया गया था। चार वर्षों से चलाए जा रहे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत हिमाचल के लगभग १०४ जनसमुदायों का अध्ययन किया गया। उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० एल.एम. खूबचन्दानी, फैलो भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला ने की।

प्रथम सत्र का प्रारम्भ डॉ० बी.आर. शर्मा की अध्यक्षता में हुआ, श्री आर.एस. सरकार ने 'हिमाचल प्रदेश—एक विहंगम दृष्टि' के अन्तर्गत हिमाचल के विभिन्न समुदायों की सूची भी प्रस्तुत की। तत्पश्चात् प्रो० भल्ला ने 'मलाणी' समुदाय तथा श्री आर.एस. सरकार ने 'खाम्पा' समुदायों पर विषय पत्र प्रस्तुत किये। जिन पर चर्चा में श्री सी.आर.बी. ललित, निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, श्री राम दयाल नीरज, श्री सत्येन्द्र शर्मा, डॉ० एस.एस. शशि ने भाग लिया और कई ऐसे समुदायों जैसे 'राठी' आदि को भी सर्वेक्षण सूची में सम्मिलित करने का आग्रह किया।

दूसरा सत्र दोपहर बाद लगभग २ बज कर ३० मिनट पर प्रारम्भ हुआ जिसकी अध्यक्षता प्रो० भल्ला ने की। इस सत्र में डॉ० बी.आर. शर्मा ने 'पठान' श्री टी.के. घोष ने 'बेड़ा' तथा डॉ० डी.के. चक्रवर्ती ने 'राथी' समुदायों पर परिचयात्मक विषय-पत्र प्रस्तुत किये, बाद में जिन पर चर्चा की गई।

आयोजन के दूसरे दिन २७ अक्तूबर, ८९ को प्रथम सत्र का प्रारम्भ प्रातः १० बजे हुआ। जिसकी अध्यक्षता डॉ० एस.एस. शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार ने की। डॉ० शशि ने इस बात पर सब लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए बताया कि जिन समुदायों, जातियों के विषय में हम लोग सर्वेक्षण कर रहे हैं उनके प्रति हमारे हृदय में नफरत नहीं होनी चाहिए। प्रेम की भावना पनपनी चाहिए।

इसी दिन दूसरे सत्र की अध्यक्षता हिमाचल के प्रसिद्ध लेखक मियां गोवर्धन सिंह ने की। विचार विमर्श के अन्तर्गत डॉ० के.एस. सिंह ने विस्तार से बताया कि हमें भविष्य में उन जातियों, उप-जातियों का सर्वेक्षण किस प्रकार करना है जो आज तक छूट गई हैं। विशेष महत्वपूर्ण बात यह कही कि हिमाचल की जातियों का स्वरूप हमारी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं से जुड़ा हुआ है तथा दूसरी ओर अपने आप में क्षेत्रीय रूप से अतिसुदृढ़ है।

उन्होंने यह भी कहा कि दो दिन के सत्र में जो प्रश्न उठाये गए वे विशेष महत्व के रहें। इस विभाग द्वारा भविष्य में जो काम किये जाने है उनके विषय में डॉ सिंह ने इस प्रकार बताया :—

१. हिमाचल की मूल जातियों के अलावा दो-तीन अन्य समुदायों जैसे एंग्लो इन्डियन, सिख, क्रिश्चयन आदि का भी अध्ययन किया जाएगा।

२. हिमाचली संस्कृति के इतिहास को शेष भारत की संस्कृति के परिप्रेक्षय में देखा जायेगा।

३. जिन जातियों का अध्ययन आज तक नहीं हुआ उनका अध्ययन भी किया जायेगा।

सत्र के अन्तिम चरण में चर्चा में सभी आमन्त्रित विद्वानों ने भाग लिया और हिमाचल की समस्त जातियों, उप-जातियों की सूची को विचार विमर्श के पश्चात् अन्तिमित किया गया।

१९ से २२ जनवरी १९९० तक चम्बा में लोक कलाओं पर कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसका उद्देश्य था-प्रदेश में लुप्त हो रही लोककलाओं से जनसाधारण को अवगत कराना, उनके संरक्षण एवं संवर्धन के लिए लोककलाकारों को प्रोत्साहित करना। इस कार्यशाला में दीवाली के अवसर पर बनाए जाने वाले लिख्णू (अल्पना) मण्डप, वेद, सिरगुंदाई, मैंहदी लगाना बगदारी डिजाइन, लकड़ी से बनाई जाने वाली कंघियां, बर्तन और घोड़े के बालों से अंगूठियां व चूड़ियां बनाना आदि लोक कलाओं पर कार्य किया गया। इस कार्यशाला में ग्यारह प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया। उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि श्री सुरेन्द्र मोहन सेठी थे। इस कार्यक्रम के प्रभारी श्री ओम प्रकाश व सहयोगी श्री रमेश जसरोटिया थे।

१८ जनवरी, १९९० को अकादमी द्वारा ज़िला बिलासपुर के निहाल सैक्टर में संस्कृति सदन की स्थापना की गई। संस्कृति सदनों की स्थापना का उद्देश्य प्रदेश के तथा प्रदेश के बाहर के साहित्यकारों व कलाकारों को प्रवास सुविधा उपलब्ध करवाना है ताकि वे साहित्य एवं कला सम्बन्धी कार्यों का सृजन कर सकें। संस्कृति सदनों की स्थापना की यह छठी कड़ी है। इससे पूर्व शिमला, धर्मशाला चम्बा, हमीरपुर, कुल्लू ज़िलों में इस प्रकार के सदनों की स्थापना की जा चुकी है।

हिमाचल अकादमी द्वारा पुरस्कृत साहित्यकार श्री सागर चन्द नैय्यर, शिक्षा मन्त्री हि०प्र० के साथ।

अकादमी पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक २२ जनवरी, १९९० को होली-डे-होम होटल, शिमला में शिक्षा मन्त्री, हि०प्र० श्री सागर नैय्यर जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस समारोह में निम्नलिखित साहित्यकारों को सम्मानित किया गया।

वर्ष १९८७

(१) श्री तुलसी रमण — ''ढलान पर आदमी'' (हिन्दी काव्य वर्ग) (काव्य संग्रह)
(२) श्री बद्री सिंह भाटिया — 'पड़ाव' (कहानी संग्रह) (हिन्दी कथा-नाटक वर्ग)
(३) श्री अश्विनी कुमार — 'दृश्यावली' (पहाड़ी कथा-नाटक वर्ग) (पहाड़ी नाटक)

वर्ष १९८८ के लिए

(१) कर्नल विष्णु शर्मा — ''वर्षा आ गई (हिन्दी कथा-नाटक वर्ग)
अचानक (कहानी संग्रह)
(२) श्री अमर सिंह रणपतिया — हिमाचली लोक (हिन्दी समीक्षा-शोध वर्ग) साहित्य (शोध)
(३) डॉ० गौतम व्यथित — गास्से हत्थ पुजाणे (पहाड़ी काव्य वर्ग)
कियां (पहाड़ी काव्य संग्रह)

इस अवसर पर प्रो० नारायण चन्द पराशर, उपाध्यक्ष अकादमी ने कहा कि अकादमी पुरस्कार योजना को और भी व्यापक बनाने पर विचार विर्मश कर रही है।

समारोह के अध्यक्ष श्री सागर चन्द नैय्यर ने साहित्यकारों को शुभाशीष प्रदान करते हुए कहा कि प्रदेश सरकार ने साहित्य संस्कृति और भाषाके विकास के लिए आठवीं पंचवर्षीय योजना में दस करोड़ रुपए की राशि का प्रस्ताव है। अकादमी सचिव डॉ० बंशीराम ने अकादमी की गतिविधियों एवं उपलब्धियों का विस्तृत विवरण दिया।

कवि गोष्ठी ७ फरवरी, १९९० को हिमाचल अकादमी द्वारा कालीबाड़ी हॉल शिमला में एक कवि गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें केन्द्र सरकार द्वारा सीमान्त क्षेत्र विकास योजना के अन्तर्गत जम्मू कश्मीर अकादमी द्वारा भेजे गए साहित्यकारों के दल ने भाग लिया। कवि गोष्ठी की अध्यक्षता श्री सी.आर.बी. ललित, निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश ने की। संगोष्ठी के प्रारम्भ में अकादमी के तकनीकी अधिकारी श्री अशोक हंस ने कवियों और श्रोताओं का स्वागत करते हुए उक्त दल को हिमाचल प्रदेश के भ्रमण के उद्देश्य की जानाकरी दी। इस अवसर पर अतिथि कवियों सर्वश्री डॉ० मनोजीत सिंह, डॉ० बलजीत सिंह, शिवदयाल 'शिवा' श्री पूर्ण सिंह 'पूर्ण', ओम प्रकाश 'दीपक' ने हिन्दी, पंजाबी व डोगरी में कविताएं सुनाईं। स्थानीय कवियों में सर्वश्री रत्न.एस. हिमेश, अशोकहंस, प्रेम कालिया, श्रीमती सुदर्शन डोगरा, ध्यानसिंह भागटा, देवराज संसालवी, बिहारीलाल बहार, रमेश जसरोटिया, ज्वाला प्रसाद 'चेतन' मोहन राठौर और श्री कर्म सिह ने हिन्दी, पहाड़ी, उर्दू कविताएं पढ़ीं। कवि गोष्ठी के अध्यक्ष महोदय ने इस अवसर पर बताया कि शीघ्र ही हिमाचल प्रदेश से भी साहित्यकारों का एक दल जम्मु-काश्मीर भ्रमण के लिए जाएगा।

पुस्तक प्रदर्शनी - १३ फरवरी, १९९० से १८ फरवरी १९९० तक विश्व पुस्तक मेला, १९९० के अवसर पर प्रगति मैदान दिल्ली में अकादमी द्वारा पुस्तक प्रदर्शनी स्टाल लगाया गया। इस प्रदर्शनी में भाषा विभाग हि०प्र० का भी सहयोग रहा। पुस्तक मेला का उद्घाटन डॉ० शंकर दयाल शर्मा माननीय उपराष्ट्रपति ने किया। प्रदर्शनी प्रात: १०-३० से सायं ८.०० बजे खुली रखी गई। असंख्य लोगों ने हिमाचली लेखकों

३ अप्रैल १९९० को प्रातः ११ बजे पहले सत्र में डॉ० बरयामसिंह ने हिमाचल की पहाड़ी कविता वर्ष १९८९-९० विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया जिस पर विस्तार से चर्चा की गई। चर्चा में प्रो० नरेन्द्र अरुण, डॉ० प्रत्यूष गुलेरी, डॉ० आत्माराम, डॉ० हरिराम जसटा, डॉ० खुशीराम गौतम, तुलसी रमण, ठाकुरदत्त आलोक, ध्यानसिंह भागटा, रतन एस. हिमेश, राजेन्द्र राजन, रमेश जसरोटिया, मनोहर सागर पालमपुरी, कर्नल विष्णु शर्मा ने भाग लिया तथा अपने अमूल्य सुझाव दिए। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ० नीलमणि उपाध्यय (सेवानिवृत्त प्राचार्य राजकीय महाविद्यालय,मण्डी) ने की।

सायं ३.०० बजे दूसरे सत्र में 'स्व० लालचन्द प्रार्थी जी आयुर्वेदाचार्य के रूप में व्यक्तित्व' विषय पर खुली चर्चा हुई। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ० आर.एम. बाली (भूतपूर्व निदेशक,आयुर्वेद विभाग) ने की। इस अवसर पर सर्व श्री बिहारीलाल 'बहार' सत्येन शर्मा, रतनसिंह हिमेश प्रो० मनसाराम अरुण, कर्नल विष्णु शर्मा तथा अन्य विद्वान् वक्ताओं ने प्रार्थी जी के पहाड़ी भाषा सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख करते हुए उनसे जुड़े अपने संस्मरणों को स्वर दिया। डॉ० बाली ने अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रार्थी जी को दोस्तों का दोस्त, विद्वानों के कद्रदान सम्बोधित करके अपनी श्रद्धाजंली अर्पित की तथा हिमाचल आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के आरम्भ करने से उनके योगदान को सराहा।

स्व० कुन्दामल जयन्ती समारोह १४ अप्रैल १९९० को श्री कुन्दामल स्मारक समिति तथा हिमाचल अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में राजकीय हाई स्कूल गौन (करौर) तहसील नादौन जिला हमीरपुर में स्व० कुन्दामल जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया।

१९ अप्रैल १९९० 'हिमाचल दिवस की पूर्व संध्या' जिला बिलासपुर हि०प्र० के किसान भवन में अकादमी द्वारा एक राज्य स्तरीय लेखक गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें अकादमी सचिव डॉ० बंशीराम शर्मा ने 'महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का हिमाचल प्रदेश के इतिहास तथा संस्कृति को योगदान' विषय पर विषय पत्र प्रस्तुत किया। संयोग से श्री राहुल सांकृत्यायन की पुण्य तिथि १४ अप्रैल ही है।उन्होंने अनेकों बार हिमाचल की यात्रा की। श्री टैगोर मैमोरियल लाईब्रेरी केलांग, जिला लाहुल स्पिति में राहुल का साहित्य उपलब्ध है। इस अवसर पर जाने माने साहित्यकार सर्वश्री सत्येन शर्मा तथा पंडित नरोत्तम शास्त्री ने राहुल जी से जुड़े अपने संस्मरण सुनाए। लेखक गोष्ठी का उद्‌घाटन बिलासपुर के उपायुक्त श्री एस.के. दास ने किया। इसी दिन दूसरे सत्र में सायं कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें सर्वश्री जयदेव किरण, अच्छरसिंह परमार, विद्यानन्द सरैक, सत्येन शर्मा, सी.आर.बी. ललित, शबीर कुरैशी, आनन्द सोहर, शशिपाल तथा अन्य कवियों ने पहाड़ी बोली तथा हिन्दी में कविताएं प्रस्तुत कीं। कवि सम्मेलन का संचालन प्रो० अवतारसिंह एनगिल ने किया।

भाषा विज्ञान प्रशिक्षण कार्यशाला ३१ मार्च से २४ अप्रैल १९९० तक अकादमी के तकनीकी सहयाकों ने भाषा, संस्कृति विभाग तथा भाषा संस्थान मैसूर के सहयोग से आयोजित भाषा विज्ञान प्रशिक्षण कार्यशाला में भाग लेकर प्रशिक्षण प्राप्त किया।

पुस्तक प्रदर्शनी ५ से ८ अप्रैल १९९० तक ज़िला बिलासपुर में ग्रीष्मोत्सव के अवसर पर अकादमी द्वारा पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

द्वारा रचित विभिन्न पुस्तकों का अवलोकन किया। दर्शकों ने सुझाव भी दिया कि हिमाचल भवन (दिल्ली) में हिमाचली लेखकों द्वारा रचित पुस्तकों के पुस्तकालय की स्थापना की जानी चाहिए।

टॉकरी लिपि प्रशिक्षण कार्यशाला १९ मार्च से २६ मार्च १९९० तक अकादमी द्वारा राज्य संग्रहालय शिमला में ८ दिवसीय टॉकरी लिपि प्रशिक्षण कार्यशाला आयोजित की गई। कार्यशाला का उद्घाटन १९ मार्च १९९० को प्रातः ११ बजे श्री सी.आर.बी. ललित, निदेशक भाषा एवं संस्कृति ने किया। कार्यशाला में श्री एम.आर. ठाकुर (सेवानिवृत) उपनिदेशक भाषा विभाग एवं सचिव (अकादमी) ने सिरमौरी कुल्लुई बोली में प्रशिक्षण दिया तथा डॉ० रीता शर्मा ने चम्बयाली बोली बारे प्रशिक्षण दिया। कार्यशाला के उद्घाटन अवसर पर डॉ० बंशीराम शर्मा सचिव अकादमी ने कहा कि अकादमी टॉकरी लिपि की प्राचीन पाण्डुलिपियों की खरीद के लिए आवश्यक कदम उठाने तथा पाण्डुलिपियों का हिन्दी व पहाड़ी में अनुवाद करने तथा उन्हें सुरक्षित करने में योजनाबद्ध तरीके से कार्य करेगी। इस कार्य के लिए परियोजना अनुदान दिया जाना भी विचाराधीन है।

नलवाड़ी मेला ११ मार्च से १५ मार्च १९९० तक राज्य स्तरीय होली उत्सव के अवसर पर सुजानपुर जिला हमीरपुर में तथा १७ मार्च से २४ मार्च १९९० तक राज्य स्तरीय नलवाड़ी मेले के अवसर पर जिला बिलासपुर हि०प्र० में अकादमी द्वारा पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। नलवाड़ी मेलों में वहां के स्थानीय कलाकारों द्वारा बनाई गई कलाकृतियां भी प्रदर्शित की गईं।

स्व० लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती समारोह २ और ३ अप्रैल १९९० को अकादमी द्वारा गेयटी थियेटर हाल शिमला में स्व० लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया। दो दिवसीय इस आयोजन के पहले दिन २ अप्रैल को सायं ६.३० बजे एक मिले-जुले कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें प्रदेश के हिन्दी, पहाड़ी, उर्दू कवियों ने भाग लिया। कवि सम्मेलन के मुख्य अतिथि श्री पी.सी. कटोच सचिव स्कूल शिक्षा बोर्ड हि०प्र० थे। कवि गोष्ठी की अध्यक्षता प्रो० नारायण चन्द पराशर, भूतपूर्व उपाध्यक्ष, अकादमी कार्यकारी परिषद तथा सदस्य विधान सभा हि०प्र० ने की।

स्व. लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती समारोह के अवसर पर डॉ० वरयाम सिंह शोषपत्र प्रस्तुत करते हुए।

फार्म-४
(नियम ८ देखिये)

१. प्रकाशन स्थान	:	शिमला (हिमाचल प्रदेश)
२. प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
३. क. मुद्रक का नाम व पता	:	एस.बी. प्रिंटर्ज, ७२ वेदमेनसन जनपद नई दिल्ली
ख. क्या भारत का नागरिक है		हाँ
४. प्रकाशक का नाम	:	डॉ० बंशीराम शर्मा
क्या भारत का नागरिक है	:	हाँ
पता	:	सचिव हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी शिमला-१
५. सम्पादक का नाम	:	डॉ० बंशीराम शर्मा
क्या भारत का नागरिक है	:	हाँ
पता	:	हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी शिमला-१

मैं, (डॉ०) बंशीराम शर्मा, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक १.४.९०

डॉ० बंशीराम शर्मा
सचिव, अकादमी

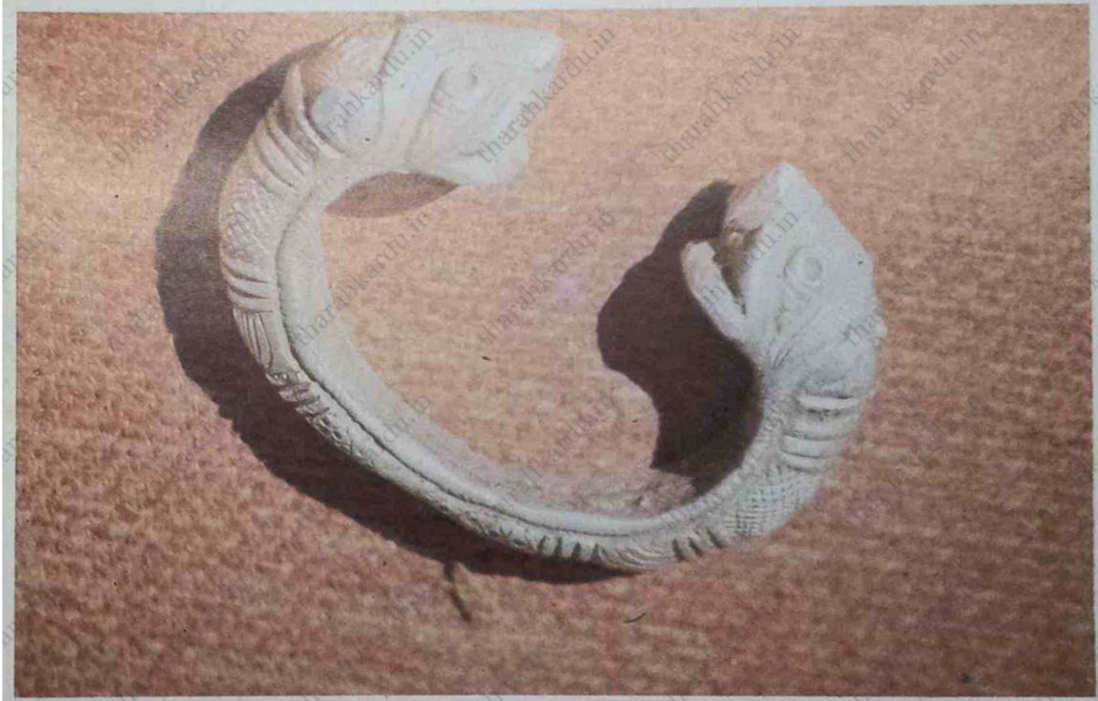

दुह्रू—स्पिति में प्रचलित आभूषण

HAACL पंजीकरण संख्या-28271/75

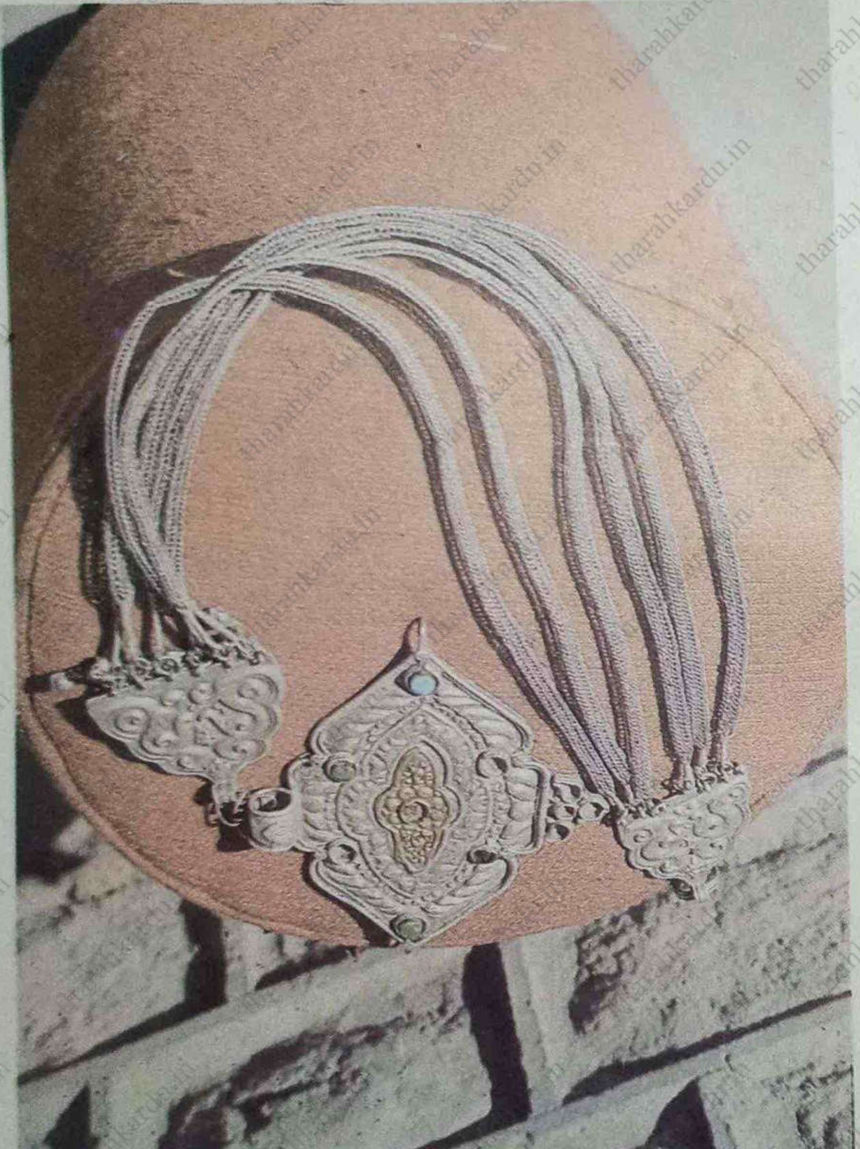

घिग्रा—स्पिति क्षेत्र में प्रचलित आभूषण।

सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला द्वारा प्रकाशित और
मैसर्ज एस.बी. प्रिंटर्ज, नयी दिल्ली- द्वारा मुद्रित